सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

जन्मोत्सव विशेषांक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 52 अंक : 07 अक्टूबर, 2019

अमृतकण

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विताः।।

(गीता 10/8)

मैं (भगवान) ही सबका उत्पत्ति-स्थान हूँ और समस्त जगत की मुझ (भगवान) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने (सब कर्मों द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन सेवन करते हैं।

❋ ❋ ❋

रुचं नोधेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसू नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।।

(यजुर्वेद)

जैसे परमात्मा पक्षपात न करके सभी वर्ग के प्राणियों से समान रूप से प्रीति करता है, वैसे ही हम सब मिलकर, ब्रह्मवेत्ता विद्वान, राजकीय व्यक्ति, व्यवसायी और सेवायें प्रदान करने वाले सभी नागरिक परस्पर रुचि और प्रीति पूर्ण व्यवहार करें।

❋ ❋ ❋

तदात्वे चानुबन्धे वा यस्य स्यादशुभं फलम्।
कर्मणस्तन्न कर्तव्यमेतद् बुद्धिमतां मतम्।।

(चरक संहिता)

कार्य करते समय, तत्काल या भविष्य में, जिसका फल अशुभ अर्थात हानिकारक हो, इसका विचार करके, ऐसे कर्म कदापि नहीं करना चाहिये। यह बुद्धिमानों का सिद्धान्त है।

❋ ❋ ❋

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो ज्ञानं भारः क्रिया विना।।

(हितोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रिय नहीं है उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान बोझ के समान है जैसे कुरूप स्त्री के पास आभूषण।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 52 अक्टूबर 2019 अंक : 07

परेषां चेतांसि प्रतिदिव समाराध्य बहुआ।
प्रसाद किं नेतुं विशसि ह्रदय क्लेशकलिलम्।।
प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणिगुणो।
विभुक्तः संकल्पः किमभिलषितं पुष्यन्ति न ते।।

अरे ह्रदय ! तू प्रतिदिन अनेकों प्रकार से दूसरों की आराधना कर अत्यन्त प्रयास से मिलने वाले अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए क्यों प्रवृत्त हो रहा है ? तू जब अन्तर्मुख होकर अपने स्थान में स्थित रहेगा तो बिना प्रयत्न के ही समस्त अभीष्ट वस्तुको देने वाले चिन्तामणि का स्वयं तेरे में उदय होगा तो क्या उस समय वह तेरी अभिलाषा को पूर्ण न कर सकेगा ?

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सयांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 6
3. गुरुदेव तुम्हारे दर्शन की– जगदीश राए बंसल 11
4. श्रीमद्भागवत् में योग–परिचर्या– डॉ. विजय सिंह 12
5. जब शिव गणों ने त्रिशूल चलाए– जगदीश राए बंसल 15
6. घट योग क्या है ?– सुश्री रेणु भारद्वाज 18
7. यम–नियमों पर दो दृष्टि कोण– योग का एक जिज्ञासु 21
8. संसार–रचना के पीछे उद्देश्य– डॉ. ऋषिराम शर्मा 23
9. साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर– श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा 30
10. मेरे गुरुदेव की सामर्थ्य– श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह 36
11. सिद्धधाम : सिद्धगुफा–संवाई– डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी 40
12. भगवत्कृपा/गुरुकृपा 44
13. सर्व सिद्धि का मूल : गुरु–प्रसन्नता– ब्रह्मलीन स्वामी मुक्तानन्द 49

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख–

गुणात्मक धर्मों की त्रिकाल में स्थिति

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

इससे पूर्व अपने लेख में हमने समझाया था कि वासनाओं का हेतु, फल, आश्रय एवं आलम्बन से जकड़े रहने के कारण, इन सबके साथ ही वासनाओं की भी सत्ता है व इन चारों कारणों के न होने से उनका यानी वासनाओं का भी अभाव हो जाता है। इस बात को इस प्रकार समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार से कारण के बिना कार्य नहीं हुआ करता है, उसी प्रकार वासनाओं की अभिव्यक्ति में हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन ये चार कारण रूप हैं। वृत्ति संस्कार चक्र इसी प्रकार चला करता है। अपने कारण का आश्रय लेकर कार्यरूप वासनाओं का प्राकट्य होता रहता है, अन्यथा नहीं। शास्त्रीय सिद्धान्त है कि–

नासतो विद्यते भावो

नाभावो विद्यते सतः।

अर्थात् जो वस्तु सत्ता में है, उसका अभाव नहीं होता, जो नहीं है उसका कभी भाव नहीं होता अर्थात् जो है वह है ही है व जो नहीं है वह नहीं ही है। इस प्रकार सद्रव्य रूप से रहती हुई वासनाओं का अभाव कैसे होगा? इसी बात को समझाने के लिए भगवान पतंजलि निर्देश करते हैं और त्रिकाल में द्रव्य रूप से स्थित वासनाओं का अस्तित्व समझाते हुए बतलाते हैं–

अतीतानगतं स्वरूपतोऽस्त्यध्व भेदाद्धर्माणाम्।

अर्थात् धर्मों का भूत, भविष्य एवं वर्तमान रूप केवल मात्र मार्ग भेद होने से वस्तु सत्ता अतीत अनागत काल में भी विद्यमान रहती ही है। केवल धर्मों के मार्ग भेद होने से विद्यमानता नहीं दीखती। जिस प्रकार से मिट्टी एक द्रव्य है, उसमें पानी मिलाकर एक गोला तैयार किया, उसको हम मिट्टी का गोला कहेंगे न कि मिट्टी। अब मिट्टी गोले के रूप में परिवर्तित हो गई वस्तुतः वह मिट्टी ही है। उसके मिट्टीपन में तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ, किन्तु मिट्टी का एक नया रूप बन गया, जिसको कहा गया मिट्टी का गोला। उसके बाद में उसी गोले से घड़ा तैयार कर लिया गया तो उसको घड़ा कहेंगे, किन्तु वस्तु सत्ता के रूप में मिट्टी उस मटके के अन्दर भी विद्यमान है ही। केवल मात्र धर्मों का मार्ग–भेद होकर वही मिट्टी गोला बन गई व वही मिट्टी घड़ा बन गई। घड़ा टूटकर ठिक्कर व ठिक्कर के बाद मिट्टी का चूर्ण व चूर्ण के बाद वही मिट्टी

की मिट्टी ही शेष रह जाया करती है।

इस सूत्र पर श्री व्यासदेव जी का भाष्य पढ़िये कि वे वासनाओं की वस्तु–सत्ता के रूप को किस प्रकार से व्यक्त करते हैं। यथा–

भविष्यद्व्यक्तिकमनागतम्, अनुभूत व्यक्तिकमतीतम्, स्वव्यापारोपारूढं, वर्तमानम् त्रयं चैतद्वस्तुजातस्य ज्ञेयम्। यदि चैतत् स्वरूपतो नाभविष्यन्नेदं निर्विषयं ज्ञानमुदपत्स्यत। तस्मादतीता–नागत स्वरूपतोऽस्तीति। किञ्च भोग–भागीयस्य वापवर्गभागीयस्य वा कर्मणः फलमुत्पित्सु यदि निरूपाख्यमिति तदुद्देश्येन तेन निमित्तेन कुशलानुष्ठान न युज्येत सतश्च फलस्य निमित्तं वर्तमानोकरणे समर्थ नापूर्वोपजनने। सिद्ध निमित्तं नैमित्तिकस्य विशेषानुग्रहणं कुरुते नापूर्वमुत्पादयतीति। धर्मी चानेक–धर्मस्वभावस्तस्य चाध्वभेतेन धर्माः प्रत्यवस्थिताः। न च यथा वर्तमानम् व्यक्ति विशेषापन्नं द्रव्यतोऽस्त्येवमतीतमनागतं च। कथं तर्हि स्वेनैव व्यङ्ग्येन स्वरूपेणानागतमस्ति। स्वेन चानुभूतव्यक्तिकेन स्वरूपेणातीतमिति वर्तमानस्यैवाध्वनः स्वरूपव्यक्तिरिति न सा भवत्यतीतानागतयोध्वनीः। एकस्य चाध्वनः समये द्वावध्वानौ धर्मिसमन्वागतौ भवत् एवेति नाभूत्वा भावस्त्रयाणामध्वनामिति।

अर्थात् भविष्य काल में जिसकी स्थूलरूपता होने लगी हो, उसको अनागत रूप कहा जाता है, वह जो अनुभूति में आ चुका है। अतीत कहा जाता है व जो इस समय भोगारूढ है, वह वर्तमान रूप है। किसी भी वस्तु के ज्ञान में इन तीनों स्थितियों को जान लेना बहुत ही आवश्यक है–यदि कोई वस्तु भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान तीनों कालों में न हो, तो उसका निर्विषय ज्ञान भी पैदा नहीं हो सकता, इसलिए यह सिद्ध हुआ कि अतीत अनागत काल में भी वस्तु रहती है, क्योंकि भोग भागी या अपवर्ग भागी पुरुष कर्मफल को लक्ष्य में रख कर ही कोई प्रयत्न करता है। यदि भोग और मोक्ष दोनों का अभाव हो, तो कौन किसके लिए प्रयत्न करे। फल की सत्यता ही प्रवृत्ति जनक है, क्योंकि बिना कारण के कार्य भी नहीं होता। अतः सिद्ध निमित्त को कारण बनाकर ही नैमित्तिक को प्राप्त किया जाता है–बिना कारण के प्राप्त नहीं किया जा सकता। चित्त धर्मी है, वह अपने धर्म–स्वभाव वाला है। अतः उसके भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान भेद से ही मार्ग हैं। जिनमें धर्मी–चित्त स्थित है, क्योंकि धर्मी कहलाता ही वह है जो शान्त उदित व व्यपदेशावस्था में धर्म का अनुपतन करे। अर्थात् उनमें स्थित रहे, इस बात को उदाहरण के साथ इस प्रकार समझ लेना चाहिए, जिस प्रकार वर्तमानकाल में धर्मी प्राप्त हुआ द्रव्य रूप से रहता है, उसी प्रकार अतीत–अनागत में नहीं, अर्थात् अतीत–अनागत में उसकी सत्ता रहते हुए भी वर्तमान की

तरह स्पष्ट नहीं है। जैसे अनागत भविष्य प्रकट होने वाला है इसी कारण उसको अनागत कहा गया और जो अनुभव में आ चुका है, वह अतीत व वर्तमानकाल में जो भोगारूढ़ है वही स्पष्ट है। अतीत अनागत में इतनी स्पष्टता नहीं होती। अत: एक रास्ते में दोनों मार्गों से भी धर्म–भेद धर्मी में स्थित रहते हैं। काल के तीन भेद ही भाव की सत्यता को बतलाते हैं। यह सभी धर्मी के धर्म गुणात्मक है–

ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः

अर्थात् वे धर्मी चित्त के धर्म चाहे वर्तमान रूप से व्यक्त हों या अतीत अनागत रूप से सूक्ष्म क्यों न हों, किन्तु हैं गुणात्मक ही। यह सभी विस्तार गुणात्मक ही हैं। गुण विस्तार को समझा नहीं जा सकता है। इस विषय में आचार्यों का उपदेश है–

गुणानोपरमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति,
यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तं तन्मायेव सुतुच्छकम्।

अर्थात् गुणों का ठीक रूप दृष्टिगत नहीं हो पाता। जो दृष्टिगत होता है, वह मायामात्र है। प्रकृति के विकृति रूप कार्य मात्र हैं, बाद में नहीं रहेंगे। यह गुणात्मक धर्म इन्द्रियों व इन्द्रियों के ज्ञान–रूप में बँटे से तो दीखते हैं, किन्तु वस्तुत: एक ही वस्तु भिन्न–भिन्न परिणामों में विभाजित सी दीखती है। विभाजित दिखाई देना केवल गुण–विस्तार है। वस्तु–सत्ता एक ही रहती है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं आता। परिणामान्तरों में भेद दिखलाई देता है। धर्मी चित्त ही प्रधान वस्तु है, उसी में अनन्त कालीन वासना–चक्र रहा करता है व अपने–अपने कारणों को पाकर उसकी अभिव्यक्ति हुआ करती है। वस्तुत: अतीत अनागत कालों में भी वस्तु–सत्ता एक ही रहती है। केवल मात्र चित्त–भेद से अनेक मार्ग भासित होते रहते हैं। इस विषय में विशेष स्पष्टीकरण हम किसी आगामी अंक में करने का प्रयत्न करेंगे। इन सभी बातों की यथार्थ अनुभूति का एकमात्र साधन योग है, जिसमें योगी साधक यथार्थ ज्ञाता बन जाता है।

विवेक–ख्याति

विवेक–ख्याति से चित्त का प्रवाह ऊर्ध्वगामी होता है। यह चित्त प्राय: कभी काम–क्रोधादि के वश नहीं होगा, हमेशा विवेकवश यानी विवेकनिष्ठ ही रहेगा। सामान्य लोगों के चित्त का प्रवाह अधोगामी रहता है। प्रसंग उपस्थित हो जाने पर चित्त फौरन काम आदि के वश हो जाता है। यह चित्त अविवेकनिष्ठ है। विवेक ख्याति से चित्त का मुख 'कैवल्य' यानी मोक्ष की तरफ ही होता है। लगन उसी की रहेगी। –योगसार

सम्पादकीय—

योगेश्वर सद्‌गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 110 वाँ पावन प्राकट्य दिवस

—आचार्य (डॉ.) दासलाल जी महाराज

कभी–कभी धराधाम पर भगवान् से 'तद्‌भाव' युक्त महापुरुष अवतरण करते हैं तथा भगवान् के संस्कारी जीवों का कल्याण करने के लिए योग के दिव्य ज्ञान का उपदेश कर उन्हें साधना के पथ पर लगाकर मुक्ति का अधिकारी बना देते हैं। ऐसे ही एक महापुरुष हरियाणा प्रान्त के एक छोटे से गाँव में अवतरित हुए हैं जो युगों–युगों तक भक्तों के लिए स्मरणीय रहेंगे। गाँव अलुपुर में इनका प्रादुर्भाव हुआ। अपने भावी पिता को अपने आगमन का संकेत दे दिया था और कहा था कि मेरी माँ को दिव्य रसायनों का सेवन कराना। अपने ध्यानयोग के बल से पूर्व जन्म का वृतान्त जान लिया था। नेपाल में 'गण्डकी नदी पर स्थित 'त्रिवेणी–धाम' में रहकर बहुत समय तक समाधि का अभ्यास करते हुए शरीर के अत्यन्त वृद्ध होने पर अपनी इच्छा से उसका त्याग करके इस जन्म के पिता पूज्य पं. देवीराम जी के यहाँ नूतन शरीर धारण किया। शैशवावस्था से ही अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण चन्द्र का साक्षात्कार बना रहता था। नाना प्रकार की बाल–लीलाओं को करते हुए अत्यन्त आल्हादित रहा करते थे। इनके सौम्य व आनन्ददायिनी रूप को देखकर 'पिताश्री' ने इनका नाम 'चन्द्रदत्त' रखा। ये अपने भक्तों को शीतलता व शान्ति प्रदान करने वाले महापुरुष के रूप में विख्यात हुए।

पिता ने इन्हें बाल्यकाल से ही ऊँचे संस्कार दिये। पिताजी स्वयं अत्यन्त धार्मिक विचारों वाले तथा तपस्वी महापुरुष थे। इन्हें वे 4–5 वर्ष की अवस्था में ही गाँव के पास नहर पर ले जाकर स्नान कराते तथा अपने साथ ही गायत्री मंत्र के जाप से बिठा देते थे। प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही कर दी थी। तत्पश्चात् हरियाणा व पंजाब के कई विद्यालयों में अध्ययन कराते रहे। अन्त में ऊँची शिक्षा के लिए इन्हें पंजाब के लाहौर में आचार्य विश्व–बन्धु जी के संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश दिलाया। आचार्य जी बड़े ही

विद्वान तथा तपस्वी धर्मात्मा महापुरुष थे। यहाँ पर कई वर्षों तक संस्कृत का अध्ययन किया। किन्तु भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी इन्हें बार–बार आकर्षित करते रहे। अन्ततोगत्वा वैराग्य की लहरें उमड़ने लगीं। विद्यालय छोड़कर श्री वृन्दावन धाम आ गये और भगवान के दिव्य लीला स्थलों व मन्दिरों के दर्शन करते हुए आनन्दित होते रहे। भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी की कृपा से अल्पायु में ही योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन प्राप्त किये और योग मार्ग में प्रवेश कर समाधि में लीन रहने लगे। ऋषिकेश आश्रम में रहते हुए वैराग्य के भाव दृढ़ होने लगे। अब आप प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग में आरूढ़ होने का विचार बनाने लगे। किन्तु अन्तर्यामी श्री प्रभुजी ने इन्हें ठीक मौके पर जाने से रोक दिया। एक पत्र में उन्होंने लिखा था 'चिरंजीव! हम बस्तियों में रहकर योग विद्या का प्रचार कर रहे हैं और तुम जंगलों में जाने की तैयारी कर रहे हो। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। अभी हमने तुमसे बहुत काम लेना है। अतः हिमालय की ओर जाने का विचार त्याग कर हमारी आज्ञाओं का पालन करो। अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए वनों में जाने का विचार त्याग दिया।

श्री प्रभुजी की आज्ञा से योग पिपासुओं को 'शक्तिपात दीक्षा प्रणाली' से दीक्षा देने लगे। साधकों में अद्भुत रहस्यमयी क्रियायें स्वतः होने लगीं। ध्यान की ऊँची–ऊँची स्थितियाँ प्राप्त होने लगीं। गुरुदेव शिष्यों का एक बड़ा झुण्ड इकट्ठा करने में रुचि नहीं रखते थे न ही प्रचार के माध्यमों से ख्याति चाहते थे। योग जिज्ञासु के धैर्य एवं श्रद्धा को परख कर कई वर्षों के बाद योग दीक्षा प्रदान करते थे। वस्तुतः अच्छे संस्कार युक्त साधक ही योग में आगे बढ़ पाते हैं। जिनके अच्छे संस्कार नहीं हैं शक्तिपात के बावजूद भी उनका पतन देखा गया। उर्वरक भूमि में बीज खाद डालने पर ही उत्तम फसल हो सकती है। ऊसर भूमि में डाला गया बीज अंकुरित नहीं हो पाता। मन्द संस्कारी व्यक्ति कदाचित् गुरुचरणों तक पहुँच भी जाये तो वहाँ भी उसे माया के ही दर्शन होते हैं। फलतः श्रद्धा बन नहीं पाती। उत्कृष्ट संस्कारवान व्यक्ति को गुरुदेव स्वतः ही खींच लेते हैं, अपनी व्यापक सत्ता का परिचय देते हुए स्वप्न या ध्यान में दर्शन दे जाते हैं। साधक दिव्य दर्शन पाकर आनन्दित रहने लगता है धीरे–धीरे प्रभु का चरण शरण मिल जाता है। सद्गुरु चरण मिल जाने पर साधक आत्म विभोर हो उठता है जन्मों से उसे जिस वस्तु की तलाश थी वह उसे मिल जाता है। उसे अब सब कुछ मिल गया। **'भक्ति–मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरवे नमः'** गुरुदेव तो सांसारिक भोग्य वस्तु भी प्रदान करते हैं उसे मुक्ति भी दे देते हैं। गुरुदेव जब 18–20 वर्ष के ही थे उस समय ही आपको चित्त निर्माण आदि सिद्धि स्वायत्त थी, अगदधत्ता के प्रसंग में आपने स्वयं ही इस तथ्य का उद्घाटन किया है। श्री प्रभुजी ने गुरुदेव से एक बार कहा था–तुम्हें श्री वृन्दावन धाम के वास

के समय ही 'प्रभु' ने सारी शक्तियाँ दे दी हैं अतः तुम योग विद्या के प्रचार में लग जाओ।

सन् 1938 में श्री महाप्रभु जी के तिरोधान के बाद श्री गुरुदेव जी श्री सिद्धगुफा सवाई धाम के दर्शनों के लिए आये। नितान्त एकान्त व सुरम्य स्थान को देखकर आनन्दित हो गये। स्थान की दिव्य छटा को देखकर आपने अपने योग प्रचार के कार्य के लिए इसे ही कार्यक्षेत्र चुन लिया। साधकों को शक्तिपात दीक्षा प्रदान की। रोगी व्यक्तियों को अपने नेति धोति आदि षटकर्म क्रियाओं का अभ्यास कराया एवं जीवन तत्व साधन की क्रियाओं को कराना प्रारम्भ किया। इन क्रियाओं का अद्भुत लाभ मिलने लगा। सभी बीमार जो असाध्य से असाध्य भी आते गुरुदेव के संकल्प से स्वस्थ होकर ही घर लौटते थे।

ध्यान योग की दीक्षा संस्कारी साधक स्वयं चमत्कारिक तरीके से आकर लेते। इनमें रघुनन्दन प्रसाद टाट वाला का नाम उल्लेखनीय है। भगवान् शिव की आज्ञा से वे गुरुदेव से योग दीक्षा लेकर साधना में लगे। तीव्र तपश्चर्या एवं गुरु भक्ति के फलस्वरूप वाक्सिद्धि एवं दिव्य दृष्टि जैसी सिद्धियाँ प्रकाशित होने लगीं। इसी प्रकार से जम्मू कश्मीर का संसार सिंह दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगी हुए हैं। कई गुमनाम साधक कन्दराओं में साधना रत हैं। पाकिस्तान की सीमा पर गुलमर्ग–खिलमर्ग की तरफ गुरुदेव का एक शिष्य साधु रहा करता था। एक बार वाराणसी के गुरुभाई प्रमोद एडवोकेट और विन्ध्यवासिनी भाई उस क्षेत्र में घूमने लगे तो अचानक वह योगी इनके सामने आकर 'जयगुरुदेव' कहने लगा। यह आश्चर्य में पड़ गये। इस नितान्त जंगल में यह कौन हो सकता है। उस साधु ने कहा–"मैं भी योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्य हूँ। उनकी आज्ञा से साधना में लगा हुआ हूँ। वे मेरी हर प्रकार से रक्षा करते रहते हैं। उस साधु ने गद्गद् कण्ठ से गुरुदेव की शक्ति व महिमा का गुणगान किया।

आपने कई प्रान्तों में योग आश्रमों की स्थापना की। वहाँ पर निःशुल्क योग की क्रियायें, आसन, प्राणायाम आदि सिखाये जाते हैं और बीमार व्यक्ति साधन से स्वस्थ होकर योग की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। योग विद्या को गुरुदेव ने कभी बेचा नहीं अर्थात् कभी फीस नहीं ली गई। नेति आदि भी निःशुल्क दिये तथा सिखाये जाते थे। आज भी वही परम्परा चल रही है। **'सन्तु सन्तु निरामयाः'** की भावना को गुरुदेव ने हमेशा सामने रखा है।

अपने देश में कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन हुए हैं उनमें कई बार इनकी अध्यक्षता रही है। 1986 में भी विश्व योग सम्मेलन में आप साधना–सत्र के अध्यक्ष थे। आप श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ योगी रहे हैं यही कारण है कि सैद्धान्तिक और अन्तरंग योग के

।। श्री चन्द्रमोहन गुरवे नमः ।।

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

ज्ञाता होने के कारण आपकी छवि व व्यक्तित्व अन्यों से विशिष्ट होती थी। योग के दुरूह सिद्धान्तों को आप बहुत ही सरल सुबोध भाषा में बताकर योग सिद्धान्तों को साधकों में कूट–कूट कर भर देते थे। योग के सिद्धान्तों को सरल ढंग से समझाने के लिए आपने 'योग सिद्धान्त' नामक यौगिक पुस्तक के दो खण्ड प्रकाशित कराकर योग साधकों का बड़ा ही उपकार किया है। धन संग्रह का आपका कभी उद्देश्य नहीं रहा। चन्दा या फीस के आप हमेशा विरोधी थे। आप कहा करते थे–''यहाँ आश्रम में जो कुछ भी है तुम लोगों का 'तुम लोगों के लिए ही है। हमारा इसमें कुछ नहीं है। हम तो निमित्त मात्र हैं श्री प्रभुजी ही करण कारण हैं।''

इस प्रकार से गुरुदेव निःस्पृह भाव से ही कर्म करते थे। अपने शिष्यों के लिए आप कल्पतरू हैं, उनके चरण तल में बैठकर जो भी कामना की जाती है सभी पूरी होती है। **'प्रणमामि गुरुम् गुरु कल्पतरूम्'** कल्प वृक्ष रूप गुरुदेव को हम सदा ही नमस्कार करते हैं। आपके चिन्तन मात्र से जीवन की कठिनाइयाँ व दुःख दूर हो जाते हैं। आप अपने शिष्यों के अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं इसलिए ही संसार में आप सर्वबन्ध होते हैं।

योग शब्द शक्ति का पर्याय है। जो अपने जीवन को योगमय बना लेता है उसी का जीवन दिव्य बन जाता है। तन, मन व बुद्धि की शुद्धि योग साधना से हुआ करती है। आत्म–साक्षात्कार का प्रमुख साधन योग को ही माना गया है। आज गुरुदेव के लाखों शिष्य/प्रशिष्य योग साधना में आरूढ़ हैं और उज्जवल व दिव्य जीवन की ओर अग्रसर हैं।

स्त्रियों के लिए गुरुदेव के उदात्त विचार–

स्त्रियों के विषय में आमतौर पर जनता में इस प्रकार का विचार है कि उनको किसी गुरु से दीक्षा प्राप्त नहीं करनी चाहिए। उसका पति ही उसका गुरु होता है। इसके अतिरिक्त और किसी से दीक्षा प्राप्त करना उपयुक्त नहीं है। लोगों की यह भावना केवल मात्र कपोल–कल्पित ही मालूम पड़ती है। हमारे प्राचीन इतिहास में इस प्रकार के बहुत से उपाख्यान हैं जिसमें यह भली प्रकार से साबित हो जाता है कि स्त्रियों को अपने कल्याण के लिए यदि सामर्थ्यवान गुरुदेव मिल जाये तो आध्यात्म विकास हेतु दीक्षा अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। स्त्रियों के शरीर में और पुरुषों के शरीर में अन्तर ही क्या है? हाड़–माँस और चर्म आदि के द्वारा प्रकृति से एक पुतला निर्मित हुआ। लिंग भेद से हम उसे स्त्री कह दें या पुरुष कह दें। यह तो केवल मात्र मन की विडम्बना है। वस्तुतः स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं। आत्मा न पुरुष है, न स्त्री है, न नपुंसक। केवल मात्र एक अमर ज्योति के रूप में विशुद्ध

प्रकाश है जो हर शरीर को अपना अधिष्ठान बना करके चमकता रहता है। लिंग भेद से जिन नामों द्वारा उसको अभिव्यक्त किया जाता है उन्हीं नामों से वह व्यावहारिक होता रहता है। यदि उसको स्त्री कहा जाता है तो उसके लिए स्त्री लिंग के शब्दों का प्रयोग होता है और पुरुष कहा जाता है तो पुल्लिंग वाचक शब्दों का प्रयोग होता है। तत्वत: पुरुषों के अन्दर जो चेतना शक्ति है वही स्त्रियों के अन्दर है। पुरुषों के अन्दर जो मनन करने की शक्ति है, वही स्त्रियों के अन्दर है। पुरुष जिस प्रकार से गन्ध ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार से स्त्रियाँ भी गन्ध ग्रहण करती हैं। पुरुष जिस प्रकार से अपने आपको स्वतन्त्रतापूर्वक सुखी रखना चाहता है, उसी प्रकार से स्त्रियाँ भी अपने आपको सुखी रखना चाहती हैं। जब स्त्रियों का खाना–पीना, सोना–बैठना, बोलना–चालना सब कुछ पुरुषों के समान हो है तो पुरुषों के समान अध्यात्म चिन्तन क्यों नहीं कर सकतीं? क्या उनको आत्मोत्थान का अधिकार नहीं है, क्या वे लोग पुरुषों के समान ही आध्यात्मिक क्षेत्र में आकर अपने आप को पूर्णरूपेण विकसित नहीं कर सकतीं? अवश्य कर सकती हैं आसन, बन्ध, मुद्रायें क्यों नहीं कर सकतीं? क्या उन लोगों को बिना शिक्षा के अध्यात्म विद्या प्राप्त हो जायेगी और क्या वे उत्थान कर सकेंगी? यद्यपि स्त्रियों को पूर्णरूपेण पतिव्रता और पुरुषों को पत्नीव्रत होना ही चाहिए, तभी गृहस्थ में पारस्परिक सुख हो सकता है अन्यथा नहीं हो सकता, किन्तु पतिव्रत पालन में गुरुदेव बाधक नहीं होते, प्रत्युत पूर्णरूपेण सहायक रहते हैं क्योंकि गुरुदेव का स्वरूप मनुष्य के विकृत मन के अन्दर शुद्ध सात्विक प्रकाश को झिलमिला देता है।

इस प्रकार से मातृ–शक्ति के प्रति गुरुदेव का बड़ा ऊँचा भाव था। और प्राय: कहा करते थे **''यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'**।

करुणामूर्ति श्री गुरुदेव का 110 वाँ प्राकट्य दिवस श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम सहित उनके अन्य आश्रमों में भी विजया दशमी पर्व बड़े धूम–धाम से मनाया जा रहा है। इस पावन बेला पर गुरुदेव के पावन चरणों में सभी शिष्यों का कोटि–कोटि नमन है।

इस पावन अवसर पर मैं सभी गुरु भाई–बहिनों को हार्दिक बधाई व शुभकामनाएँ देता हूँ।

श्री रामलाल प्रभवे नमः

गुरु देव तुम्हारे दर्शन की

जगदीश राए बंसल 'अधम' 9212434003

गुरु देव तुम्हारे दर्शन की–इक लहर सी मन में रहती है।
बात–बात पर गुरुदेवा पुकारूँ–शर्म सी मुझ को लगती है।।

यम नियम का ज्ञान नहीं–मेरी ध्यान धारणा खोई है।
जब ध्यान करूँ गुरुदेव आपका–बेगानों की दुहाई है।
भोर उठ कर मन्त्र रटूँ–तन्द्रा मुझ को सताती है।।

गुरु देव....(1)

प्रारब्ध तो मेरा पलटा नहीं–क्रियमाण पलट दे दाता
कुण्डलिनी मेरी चेतन कर दे–मर जाय मन की ममता
जिस हाल में मैं जिन्दा हूँ–क्या आपको अच्छी लगती है।।

गुरु देव ....(2)

लाखों की बिगड़ी बनाई है–मेरी दशा दिशा बदल देना
तारण हारा नाम आपका–मेरे दुख ले कर सुख देना
चरण पकड़ मनाऊँ दाता–गफलत मुझ से होती है।।

गुरु देव ...... (3)

जब तक चन्दा सूरज जग में–मेरे गुरु का नाम रहे
झण्डा ऊँचा सँवाई धाम का–जग में जय–जय कार रहे
जब–जब आए लहर शिवा में–ये ही "अधम" की हस्ती है।।

गुरु देव ....(4)

ॐ श्रीरामलाल प्रभवे नमः

श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

अड़तीसवें अध्याय में अक्रूर जी की ब्रजयात्रा का वर्णन है। परमभाग्यवान अक्रूर जी ब्रज की यात्रा करते समय श्रीकृष्ण की परम प्रेममयी भक्ति से परिपूर्ण हो गये। अहा! अब श्रीकृष्ण–बलराम का दर्शन होगा। मेरा जीवन सफल हो गया। क्योंकि उन भगवान को मैं नमन करूँगा जिन्हें बड़े–बड़े योगी भी केवल ध्यान में दर्शन पाते हैं।

ममाद्यामंगलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः।
यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपंकजम्।।6।।

(अ. 38 स्कन्ध 10 पूर्वार्ध)

अहो! जिन्हें युगों के ऋषि–महर्षि ध्यान करके अज्ञानान्धकार से पार हो गये हैं। ब्रह्मा आदि जिनके चरणकमलों की उपासना करते हैं, उन्हीं चरणों का आज मैं साक्षात् दर्शन करूँगा।

अक्रूर जी स्वयं रथ हाँकते हुये उनका मन ब्रजभूमि में निवास कर रहे जगत् नियन्ता के चरणों में लगा हुआ था। तभी उनके रथ की दाहिने भाग से हरिणों का झुण्ड कुलाचें मारता निकलता है। इस शुभ लक्षण से वे आश्वस्त होते हैं कि अवश्य आज सौन्दर्य धाम के दर्शन मुझे होंगे। वे सबके परम गुरु हैं, **''वं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं।''**

आज मेरा परम मंगल होना है क्योंकि प्रातः से बार–बार शुभ सुकून हो रहे हैं। अहा! उनके चरण कितने दुर्लभ हैं। बड़े–बड़े योगी आत्म–साक्षात्कार के लिये उनके दिव्य चरण कमलों को अपने हृदय में धारण करते हैं और मैं तो प्रत्यक्ष दर्शन कर उन पर लोट जाऊँगा। महाभाग्यवान गोपों का भी मैं एक–एक कर चरण वन्दना करूँगा।

अथावरूढः सपदीशयो रथात्, प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये।
धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं, नमस्य आभ्यां च सखीन् वनौ–कसः।।

(अ. 38 श्लोक 15 स्कन्ध दसम् पूर्वार्ध)

अक्रूर जी इस प्रकार की कल्पना–जल्पना करते, रथ को ब्रज की ओर हाँके जा रहे थे। अहा! उनका आलिंगन प्राप्त होते ही मेरे अनादिकाल के कर्म बंधन, टूट जायेंगे।

इसी चिन्तन में डूबे–डूबे अक्रूर जी सायं नन्दगाँव पहुँच गये। उन्होंने श्रीकृष्ण व बलराम जी को गाय दूहने के स्थान में बैठा देखा। उनकी शोभा सोने से मढ़े हुये मरकतमणि और चाँदी के पर्वत सा जगमगा रहा था।

अक्रूरजी रथ से कूद पड़े और श्रीकृष्ण–बलराम के चरणों में साष्टांग लोट गये। शरीर उनका रोमांचित हो उठा, आँखें सजल हो गई थी। भगवान उनके मनोभाव जान गये। वे अपने हाथों से उठाकर उन्हें हृदय से लगा लिये। दोनों भाई उन्हें आदरपूर्वक घर ले गये और उनका बड़ा स्वागत–सत्कार किया। नन्द जी ने पूछा–अक्रूर जी! आप लोग निर्दयी कंस के जीते–जी कैसे दिन काटते हैं? जिस निर्दयी कसाई ने अपने बहन के नव जात शिशुओं का वध किया है। भला आप लोग कैसे सुखी होंगे।

अक्रूर जी ब्रज आते समय मन में जो–जो चिंतन किया था वह सब पूरा हुआ। भगवान ने अक्रूर जी से कहा–चाचाजी! आपका हृदय बड़ा शुद्ध है। मथुरा के हमारे सम्बन्धी सब कुशल से तो हैं न? नाममात्र का मामा कंस तो एक भयंकर व्याधि है। मुझे बड़ा दुःख है कि वह नाना, हमारे माता–पिता को कैद कर रखा है। चाचा जी! अब बतलाइये कि आपका शुभागमन किस कारण को लेकर हुआ है?

अक्रूर जी ने कंस का संदेश श्रीकृष्ण से निवेदन कर बता दिये। नन्दबाबा ने गोपों को आज्ञा दिया कि गोरस एकत्र करो। भेंट सामग्री से छकड़े लाद लो। कल प्रातः हम सभी मथुरा की यात्रा करेंगे। वहाँ एक बड़ा उत्सव हो रहा है। हम लोग उसे भी देखेंगे।

इधर श्रीकृष्ण–बलराम के मथुरा गमन की बात सुनकर गोपियों की बड़ी दीन दशा हुई। वे अचेत सी हो गई। भगवान् के स्वरूप का ध्यान आते ही बहुत गोपियों की चित्तवृत्तियाँ सर्वथा निरुद्ध हो उठीं वे समाधिस्थ–आत्मा में स्थित हो गयीं। उन्हें अपने शरीर और संसार का कुछ ध्यान ही न रहा।

अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेष वृत्तयः।
नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव।।।5।।

(अ. 39 स्क. 10)

भगवान के बिछोह के भय से कातर रुदन करती वे झुण्ड में एकत्र हो कहने लगीं– विधाता ! तुम निष्ठुर हृदय हो। पहले श्यामसुन्दर से मिलाया अब उसे ही आँखों से ओझल कर रहे हो। यह कर्म तुम्हारा अनुचित और क्रूरतापूर्ण है। उन्हें रासलीला आदि का घनीभूत अनुभूति होने लगी। वे रुदन करती श्रीकृष्ण के लीलाओं का ही गान कर रही थीं।

यदुवंशशिरोमणि भगवान श्रीकृष्ण से गोपियों की विरह व्यथा छिपी नहीं थी उन्होंने दूत के द्वारा ''मैं आऊँगा'' यह प्रेम संदेश देकर उन्हें धीरज बधाया। गोपियों को जाते हुये श्रीकृष्ण–रथ की पताका का जब तक दर्शन होता रहा वे चित्रलिखित–सी खड़ी उसी ओर निहारती रहीं।

इधर धावमान रथ श्रीकृष्ण–बलराम को लेकर यमुना के किनारे पहुँचा। यह यमुना का ब्रह्महृद क्षेत्र था। यहीं अक्रूर जी ने दोनों भाइयों से आज्ञा लेकर विधिवत् कुण्ड में स्नान करने के पश्चात् जल में डुबकी लगाकर गायत्री का जाप करने लगे। उसी समय जल के भीतर अक्रूर जी ने देखा श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई एक साथ बैठे हैं। वे आश्चर्यचकित हो सोचने लगे उन्हें तो रथ में बैठा आया हूँ अब ये जल में कैसे आ गये।

जब यहाँ हैं तो रथ पर नहीं होंगे ऐसा सोचकर जल से सिर बाहर निकाल कर देखा तो वे पूर्ववत् रथ पर बैठे दीखे। उन्होंने सोचा जो जल में देखा कदाचित मेरा भ्रम था। फिर डुबकी लगायी। जल में उन्होंने देखा कि साक्षात् अनन्तदेव श्रीशेष जी विराजमान हैं और सिद्धादिक उनकी स्तुति कर रहे हैं। उनकी गोद में पीताम्बर धारी घनश्याम विराजमान हैं। नन्द–सुनन्द आदि पार्षद निर्दोष वेदवाणी से स्तुति कर रहे हैं। सर्व विद्यायें, माया आदि शक्तियाँ मूर्तिमान होकर उनकी सेवा कर रही हैं–

सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः।
सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः।।53।।
प्रहलाद नारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः।
स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः।।54।।

भगवान की यह झाँकी निरखकर अक्रूर जी का हृदय परमानन्द से पूर्ण हो गया। उन्हें प्रेमाभक्ति प्राप्त हो गयी। सारा शरीर हर्षावेश से पुलकित हो गया। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु उमड़ पड़ा। बड़े साहस से उन्होंने परमात्मा के चरणों में सिर रख कर प्रणाम किया तथा बड़ी सावधानी से स्तुति करने लगे–

गिरा गद्गदयास्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः।
प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः।।57।।

(अ. 39 स्कं. 10)

श्री रामलाल प्रभवे नमः

जब शिव गणों ने त्रिशूल चलाए

जगदीश राए बंसल 'अधम' नई दिल्ली मो. 9212434003

प्रातः स्मरणीय, अखण्ड मण्डलाकार, अमृत स्रोत, अकारण दयालु योग योगेश्वर गुरु देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज, गुरु पूर्णिमा के तुरन्त पश्चात् आशुतोष भगवान शिव भोले के निमित्त एक विशाल अनुष्ठान का आयोजन अपने सवाई धाम आश्रम में किया करते थे। वैसे तो भाग्य विधाता जी पूरे अनुष्ठान काल में मौन व्रत रखते थे, मगर अपने साधक बच्चों के उत्थान हेतु प्रवचन अवश्य करते थे कि साधकों को किस प्रकार रह कर स्वयं का आत्मोत्थान करना चाहिए एवं अपने भावी जन्म का उज्जवल निर्माण कैसे करना चाहिए.. ... इत्यादि। यह अनुष्ठान मात्र अपने प्रिय बच्चों के लिए ही नहीं, अपितु स्थानीय जनता एवं पूरे देश के कल्याणार्थ किया जाता रहा है। इसी गुरु परम्परा को निभाते हुए जगत नियन्ता सर्वाधार– अखिल ब्रह्माण्ड नायक गुरु देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के परम लाड़ले शिष्य योगीराज श्री दासलाल जी महाराज ने सन् 2014 में 15 जुलाई से 24 जुलाई तक यह अनुष्ठान बड़ी धूम–धाम से लेखक सहित सैंकड़ों श्रद्धालुओं की उपस्थिति में सम्पन्न किया।

ग्यारह दिवसीय इस शुभ समारोह में देश के कोने–कोने से पधारे जिज्ञासु भाई–बहिनों का योगदान एवं उत्साह चर्म सीमा पर देखा गया। वेदान्त विद्यालय कर्णवास बुलन्दशहर के प्रसिद्ध वेदाचार्य श्री बैकुण्ठ शर्मा जी सहित इक्कीस वेद पाठियों एवं विद्यार्थियों द्वारा आश्रम को वेद मन्त्रों से गुंजायमान किए रखा। तीन पारीयों में दैनिक पूजा–अभिषेक एवं साधना का लाभ अनेक साधकों ने तो उपवास रख कर उठाया ही, प्रकृति का उल्लास भी देखते ही बनता था। यथा, देव राज इन्द्र महाराज अपनी प्रसन्नता रह–रह कर बिखेरते रहे वहीं भगवान सूर्यनारायण की सिन्दूरी आभा से आश्रम खिल खिला उठता, इन्द्र धनुष ने तो जन–जन के हृदय में सप्तरंगीला महल ही अंकित कर दिया। या यों कह लीजिए कि–

इन्द्र ने हमको अमृत का जाम भेजा है
रवि ने गगन से सलाम भेजा है
गुरु तत्व से सलामत रहो मेरे लल्ला
तहेदिल से सदा शिव ने पैगाम भेजा है।

इसी तामझाम के कारण एक दिन तीसरी पारी के उपरान्त यों ही बैठे–हँसते–हँसाते एवं गुरु चर्चा के चलते एक आदरणीय गुरु भाई श्री मौजी राम बंसल ने यथा योग्य नहले पर दहला लगाया कि एक बार सिद्ध योगाधिपति गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का

कोलकाता में योग प्रचार कार्यक्रम चल रहा था। बात उन दिनों की है जब वर दाता रिद्धि–सिद्धि के स्वामी जी की युवावस्था थी और केश–दाढ़ी नहीं रखते थे। सिद्धों के सम्राट–विश्वनाथ जी के प्रवचनों में साधकों एवं सम्भ्रान्त श्रोताओं का उत्साह एवं संख्या और उमड़ता प्यार देखते ही बनता था। प्रवचनों में आराध्यदेव जी अपने सद्गुरु अखिल ब्रह्माण्ड नायक जगत नियन्ता महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा विरासत में मिले–योगामृत को खुले दिल से लुटा रहे थे। इसी ख्याति को कानों कान सुन कर एक दिन शिविर में दो पूजा–पाठी कथित विद्वान पं. जी पधारे। त्रयलोक पावन जी का हाव–भाव–गठीला पुष्ट शरीर–मस्तक पर चन्द्र सी छटा–वाणी में ओज और मन मर्यादा देख कर उक्त दोनों पंडित मन ही मन गुरुदेव के प्रति राग द्वेष की ज्वाला से भड़क उठे। परस्पर कहने लगे कि ये पाखण्डी हमारा रोजगार चौपट कर रहा है। सेठ लोग हमारा सम्मान करते हैं–पैरों पड़ते हैं–ढेर दक्षिणा देते हैं....। हमें कुछ करना चाहिए। इसी को कहते हैं कि जिसको ठीक से मान न पचे तो अहंकार की डकारें आने लगती हैं।

परिणामतः आँख आँखों के इशारे से दोनों निकट के एक पार्क में गए। योजना बनाई कि हम इसको शास्त्रार्थ में पछाड़ कर, यहाँ से भागने पर विवश कर देंगे। सारी रात्रि पार्क में बैठे–बैठे गीता और रामायण से काट छाँट के प्रश्न लिखते रहे। अन्त में एक बार पुनः प्रश्नों को पढ़कर ठहाका मार कर हँसे। फिर गुरु जी के प्रति खूब जहर उगला कि ये पहलवान सेठों के मेवे–मलाई चाट–चाटकर चिकना हो गया है.....। मगर हम धर्म की रक्षा करेंगे, समाज को अधर्म से बचायेंगे–हम इस यश का श्रेय लेंगे। हमारी धाक जम जाएगी–लोगों को हमसे मिलने के लिए बुकिंग करानी पड़ा करेगी–इत्यादि। आप ने सुना होगा, ''एक होता है दही–बड़ा, एक होता है कांजी–बड़ा और एक होता है मैं–बड़ा''। इस प्रकार प्रातःकाल हो गया। इनके मन बुलन्द थे–शरीर में स्फूर्ति थी–इरादे पक्के थे।

अब दोनों विप्र अपनी योजना को प्रारूप देने के लिए जैसे ही खड़े हुए कि वहाँ पर अचानक दो शिवगण महाराज प्रकट हो गए। दोनों गण अपने हाथ में चमकदार त्रिशूल लिए थे। उन गणों ने आव देखा ना ताव, टूट पड़े उन धर्म के ठेकेदारों पर, दे दना दन ..... दे दनादन .....। धर्म के ठेकेदार चिल्लाए, ये क्या बला आ गई? बोले, ठहरो, ठहरो, मत मारो..... हम मान्यवर ब्राह्मण हैं .... हमारा क्या अपराध है ..... छोड़ दो ...... मत मारो .....। शिवगण बोले, पहले अपने प्रश्नों के उत्तर ले लो, फिर छोड़ देंगे। विप्र बोले, हमें उत्तर–सुत्तर कुछ नहीं लेने .... हाथ जोड़ते हैं ...... पैर पड़ते हैं ..... माफ कर दो हमें। गणराज बोले क्षमा तो तुम्हें वह चिकना पहलवान ही करेंगे। विप्र बोले, हे भगवान हमें कुछ समय तो दीजिए .... क्षमा मांग लेंगे। गणों ने उनको कुछ समय दे दिया।

त्रिशूल लगे तो–आ गई अकल।
पहले विप्र थे–बदल गई शकल।।

रहीम जी महाराज भी अपने समर्थन में कहते हैं कि–

खीरा सिर ते काटिए–मलियन नमक लगाय

रहिमन करुये मुखन को–चहियत इहै सजाय।

दोनों पंडित सिर पर पैर रख कर भागे और जा पहुँचे हमारे आपके आदरणीय गुरुभाई श्री रघुनन्दन प्रसाद अग्रवाल के पास। यहाँ इन्होंने हाल ही में एक अनुष्ठान किया था। अग्रवाल जी को देखते ही दोनों पैरों में पड़ गए। बोले–सेठजी, गलती हो गई क्षमा करो। ऐसी गलती फिर नहीं करेंगे .... हम पर दया करो .... इत्यादि। सेठ जी बोले क्या हो गया सारी बात बतलाओ। पंडितजी बोले, मालिक आप कल हरियाणा भवन में योग प्रचार सुनने गए थे, उन महाराज जी के हम अपराधी हैं। उनसे हमें क्षमा दिलवाइए अन्यथा हम बेमौत मारे जायेंगे। बातों का सार समझ कर सेठ जी बुदबुदाए कि कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगु तेली। चलो ..... ।

पारिणामतः तीनों भव भय हारी जी की चरण–शरण में हरियाणा भवन पहुँचे। उस समय क्षण–क्षण पल–पल के ज्ञाता आशुतोष जी महाराज–जीवन तत्त्व साधन रत थे। देखते ही दोनों पंडित चरणों में पसर गए। मुख से कुछ बोलते नहीं बन रहा था। भक्तवत्सल जी ने दोनों को उठा कर अपने हृदय से लगा लिया। पं. जी संकुचित शब्दों में बोले, महाराज हमें क्षमा कर दें। गुरुदेव महाराज बोले, पहले तुम अपने प्रश्नों के उत्तर ले लो ...... तुम्हें क्षमा करता हूँ ..... तुमने कोई अपराध नहीं किया। पंडितों की सांसें ऊपर नीचे हो रही थीं। सोचने पर विवश हो गए कि ....

आप फरिश्ता हैं या परवर दीगार हैं,
बात पूछी नहीं पहले ही जानकार हैं,
चींटी के पग नुपुर बाजे यदि
तो भी सुनने वाले सरकार हैं।।

इस प्रकार क्षमा पाकर अपनी गर्दिश पर धूल डालने हेतु दोनों पंडितों ने दीक्षा लेने की गुहार लगाई। अन्तर्यामी जी सब कुछ जानते ही हैं। अतः उन्होंने अभिमान के अंगारों का स्वाद, बेहद मुस्कान से चखाते हुए पंडितों को दीक्षा या कहिए क्षमा दीक्षा दे ही दी। इस प्रकार मुंगेरीलाल के हसीन स्वप्नों का अन्त हुआ।

सुना गया था कि उक्त दोनों पंडितों का अन्ततोगत्वा अनिष्ट ही हुआ। मूल रूप से वे दोनों हरियाणा में जिला झज्झर के अन्तर्गत बेरी गांव के रहने वाले थे। यहाँ पर यह बात सत्य प्रमाणित होती है कि–

आपकी मुस्कां ने हमारे होश उड़ा दिए।
अभी होश आया था कि फिर मुस्का दिए।।

घट योग क्या है?

सुश्री रेणु भारद्वाज, एम.ए., बी.एड.

(सुयोग्य लेखिका ने यह प्रस्तुति घेरण्ड संहिता के आधार पर की है जो पठनीय है।

–सम्पादक)

घट योग अथवा घटस्थ योग क्या है, इस लेख में यही दर्शाने का प्रयास किया गया है। कहते हैं पुराकाल में यही जिज्ञासा कुछ योग–पथगामी साधकों ने महर्षि घेरण्ड के सामने रखी थी। महर्षि ने इन सबको समझाते हुए बताया था कि घट योग–प्रकृति का ही एक अपर नाम है। एक बार राजा चण्ड कापालि ने भी मुझसे यही प्रश्न पूछा था यद्यपि राजा ने बहुत से योग–प्रवचन सुने थे और अनेक अच्छे–अच्छे योग सम्बन्धी ग्रन्थ भी वह पढ़ चुका था किन्तु मेरे जिस प्रवचन से उसे पूर्ण समाधान हुआ था वही प्रवचन अपनी स्मृति और जानकारी के आधार पर मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ–आशा है तुम्हारा पूर्ण समाधान भी इससे हो सकेगा।

पहले यह समझने का प्रयत्न करो कि योग को घट योग क्यों कहते हैं, सुनो योग के अनुसार **प्राणापाननादाबिन्दु जीवात्मपरमात्मनो**–अर्थात् प्राण, अपान, नाद, बिन्दु, जीव और परमात्मा के मिलने से जो शरीर बनता है, उसे घट कहते हैं और घटस्थ अर्थात् शरीर में की जाने वाली योग–क्रियाएँ ही घटस्थ योग कहलाती हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि परमात्मा हमारे शरीर में विद्यमान है, उस परमात्मा को जानने के लिए जो प्रयत्न किया जाता है वही घट योग है।

चण्डकापालि एक महाबली राजा थे, इसीलिए महर्षि घेरण्ड ने उन्हें महाबाहो कह कर सम्बोधित किया है, सामान्य गृहस्थ हो या राजा, सभी योग–साधन कर सकते थे। सामान्य गृहस्थ जब योग में पारंगत हो जाते थे तब वे ऋषि या मुनि कहलाते थे और सन्यासी और योगी होने पर राजा को राजर्षि कहते थे।

योग किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं, वरन् जो मनुष्य इसका साधन कर सके वही इस मार्ग पर चल सकता है। जो अपने जीवन को मोक्ष प्राप्ति के प्रयत्न में लगा दे। इसीलिए महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डकापालि को प्रसन्नतापूर्वक योग का उपदेश किया। क्योंकि राजा इसके लिए अधिकारी पुरुष थे।

माया का अर्थ अज्ञान और पाप है. माया का त्याग किये बिना योग–साधन कभी सफल नहीं हो सकता। 'तृष्णा क्रोधोऽनृत माया लोभमोहो प्रियाप्रिये (ना. प. उ.) अर्थात् 'संन्यासियों के लिए तृष्णा, क्रोध, असत्य, माया, लोभ, मोह, प्रिय और अप्रिय सभी वर्जित है। माया का अभिप्राय असत्य अथवा मिथ्यात्व से ही है। विद्वानों ने इसी को अविद्या माना है। वह माया ज्ञान से दूर हो सकती है। जब तक माया का आवरण पड़ा है, तब तक ज्ञान हो ही नहीं सकता। और जब ज्ञान उत्पन्न हो जाये, तब तो मोक्ष की प्राप्ति सुलभ हो ही जाती है। इसीलिए ज्ञान को मनुष्य का बन्धु माना गया है।

अहंकार सभी दोषों का मूल है। जब तक अहंकार का अस्तित्व शेष रहता है तब तक सद्भावों का उदय सम्भव नहीं है। संन्यासोपनिषत् में स्पष्ट कहा है–

यस्य नाहंकृतो भावो
बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
यः समः सर्वभूतेषु
जीवितं तस्य शोभते।।

अर्थात्–जिसमें अहंकार का भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि में अहंकार लिप्त नहीं है, जो सब भूतों को समान भाव से देखता है, वह जीवन ही प्रशंसनीय है।

श्लोक में योग–बल को सर्वोत्कृष्ट कहकर उसकी महत्ता प्रकट की है। अक्षि उपनिषद् में सांकृत मुनि और सूर्य का सम्वाद है। इसमें योग की सात भूमिकाओं का वर्णन है। सूर्य कहते हैं कि योग में प्रवृत्त होने पर अन्तःकरण उत्तरोत्तर वासनाओं से दूर हटता जाता है। उसे भोगों की आकांक्षा नहीं रहती उनका मन भवसागर से पार जाने के प्रयत्न में ही लगा रहता है।

अभ्यासात् कादिवर्णानां
यथाशास्त्राणि बोधयेत्।
तथा योगसमासाद्य तत्त्वज्ञानं
च लभ्यते।।

जैसे कवर्ग आदि वर्णों का क्रमपूर्वक अभ्यास करने से सभी शास्त्रों का बोध संभव है, वैसे ही योग का अभ्यास करने से तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति होती है।

वर्णमाला के अभ्यास से लिखने–पढ़ने की क्षमता उत्पन्न होती और वह धीरे–धीरे इतनी बढ़ जाती है कि उससे सर्व शास्त्रों का अध्ययन किया जा सकता है। एक छोटा

बालक अ, इ, उ, इत्यादि के अक्षर ज्ञान से शिक्षा प्रारम्भ करता है और अभ्यास करते–करते सभी विषयों में विद्वान हो सकता है। अक्षर ज्ञान से क्या नहीं हो सकता? सृष्टि का सम्पूर्ण रहस्य वर्णमाला में भरा हुआ है। वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद्, स्मृति आदि किसी की भी उपलब्धि अक्षर ज्ञान के बिना नहीं हो सकती।

प्रत्येक कार्य के सुचारु रूप से पूर्ण होने के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। किसी कार्य को बार–बार करना ही अभ्यास कहा जाता है। अभ्यास से बड़े–बड़े कार्य पूरे हो जाते हैं। 'रसरी आवत जात ते सिल पर होत निसान' इस कवि–कथन के अनुसार अभ्यास बड़े–बड़े पाषाणों को काटने में सहायक हो सकता है।

'अभ्यास होने पर योगी को कोई विकार नहीं सताता।' उसे किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती। मल–मूत्र आदि घट जाता है, नाक, थूक, पसीना, मुख की दुर्गन्ध आदि भी नहीं रहती–

एतानि सर्वथा तस्य न
जायन्ते ततः परम्।
ततोऽधिकतराभ्यासाद्बल
मुत्पद्यते बहु।।

अर्थात्–यह सब विकार उसे नहीं रहते और अभ्यास की वृद्धि करने से बहुत सी शक्ति प्राप्त हो जाती है।

इस प्रकार तत्त्व ज्ञान की वृद्धि में भी अभ्यास अत्यधिक सहायक है। साधक को अभ्यास करते रहना चाहिए। योग–साधना भी अभ्यास से ही साध्य होती है, यही तात्पर्य है।

यम-नियमों पर दो दृष्टिकोण

-योग का एक जिज्ञासु

कुछ मत योग के छः अंग मानते हैं। वे यम एवं नियम को योग के अंग नहीं मानते जबकि भगवान पतंजलि ने योग के आठ अंग माने हैं। हम इस लेख में यम-नियमों की अनिवार्यता को दो दृष्टिकोणों से समझने का प्रयास करेंगे-आध्यात्मिक एवं सामाजिक।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण-

यम-नियम सिद्ध किये बिना भी श्री गुरुदेव की कृपा से समाधि प्राप्त हो सकती है, इसमें जरा सा भी सन्देह नहीं है। समाधि प्राप्त होने से क्या होता है? यह इस मुण्डक-उपनिषद् के मन्त्र से स्पष्ट हो जायेगा-

भिद्यते हृदयग्रन्थि,
छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि,
तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

अर्थात् हृदय-ग्रन्थि का भेदन हो जाता है, सब संशय दूर हो जाते हैं। कर्म क्षीण हो जाते हैं, संस्कार नष्ट हो जाते हैं, वृत्तियों का विनाश हो जाता है और परमपिता परमात्मा के दर्शन होते हैं। लेकिन जैसे ही वह व्यक्ति समाधि से उठता है, अपनी प्रकृति के अनुसार कर्म करता है जिससे वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। वृत्तियों से संस्कार पैदा होते हैं और व्यक्ति फिर जन्म मरण के चक्कर में पड़ जाता है। जिन वृत्तियों का समाधि द्वारा विनाश हो गया था, वे पुनः उत्पन्न हो जाती हैं। प्रश्न उठता है-इन वृत्तियों का समूलोन्मूलन किस प्रकार हो। इसका सीधा-सादा उत्तर यह है-अगर साधक का चित्त शुद्ध हो चुका है, तो समाधि के पश्चात् उसमें वृत्तियाँ उत्पन्न ही नहीं होंगी। चित्त की शुद्धता के लिए यमों एवं नियमों का सिद्ध करना अनिवार्य है।

इसके अतिरिक्त यम-नियम सिद्ध हो जाने से ही समाधि प्राप्त करने की योग्यता आ जाती है। भगवान पतंजलि के इस सूत्र से यह स्पष्ट होता है-

तपः स्वाध्यायेश्वर-
प्रणिधानानि क्रियायोगः
समाधि भावनार्थः,
क्लेशतन् करणार्थश्च।।

अर्थात् तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान, क्रियायोग हैं। क्रियायोग अविद्या और क्लेशों का विनाश करता है और समाधि प्रदान करता है। इससे चित्त शुद्ध हो जाता है और

समाधि प्राप्त करने योग्य हो जाता है।

इसलिए चित्तवृत्तियों के समूलोन्मूलन के लिए यमों एवं नियमों की साधना परमावश्यक है। ताकि मनुष्य श्री गुरुदेव की कृपा से समाधि प्राप्त करके जन्म–मरण के चक्कर से छूट जाये और मोक्ष को प्राप्त हो।

व्यावहारिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण

यम—हमारा समाज यम में बताये हुए साधनों पर ही टिका हुआ है। जीवित रहने का प्रश्न ही 'अहिंसा' सिद्धान्त से जुड़ा हुआ है। समाज में व्यक्ति जितना अधिक अहिंसा का पालन करेंगे, उतना ही लोग अधिक निर्भय और आश्वस्त रहेंगे। समस्त सामाजिक लेन–देन एवं व्यवहार पारस्परिक विश्वास और प्रतिज्ञा–पालन पर निर्भर करते हैं। यदि समाज का सत्य पर से विश्वास उठ जाये, तो सारा सामाजिक ढांचा अस्त–व्यस्त हो जाये। किसी भी तरह का कोई व्यवसाय या लेन–देन सम्भव न हो सकेगा। तीसरा यम है अस्तेय। अगर अपनी कमाई सुरक्षित न रखी जा सके, तो इस संसार में कोई भी व्यक्ति परिश्रम नहीं करेगा। अस्तेय समाज को अनीति व अन्याय से बचाता है। चौथा यम–ब्रह्मचर्य है, जिसके बिना संसार में महामारियाँ, भूख आदि से लोग व्याकुल हो उठेंगे। स्त्री–पुरुषों के सम्बन्धों की पवित्रता कायम रखने व जनसंख्या पर नियन्त्रण रखने के लिए यह यम आवश्यक है। पांचवाँ यम–अपरिग्रह लोगों की लालसाओं को नियन्त्रित करता है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को वस्तु–उपभोग का अवसर प्राप्त होता है और वह समाज में निर्वाह कर सकता है। इसके बिना गरीब लोगों का जीवन–निर्वाह कठिन हो जायेगा।

नियम–'शौच' स्वास्थ्य का आधार है। हर व्यक्ति का स्वास्थ्य (भीतरी और बाहरी) इस पर निर्भर करता है। सफाई गाँव, शहर एवं देश के लिए भी इस दृष्टि से आवश्यक है। 'सन्तोष' मनुष्य को सुख देता है। जितना है उतने में सन्तोष हो जाये, तो सभी लोग सुखी हो जायें दुख रहे ही ना। 'तप' मनुष्य को कठिनाइयों व संघर्षों से जूझना सिखाता है। जो व्यक्ति आराम का आदी हो गया है, वह जरा–सी कठिनाई नहीं सहन कर सकता और कठिनाइयाँ इस जीवन में आना स्वाभाविक है। 'स्वाध्याय' मनुष्य को ज्ञान प्रदान करता है। ज्ञान के बिना पग–पग पर ठोकरें खानी पड़ती हैं, इसलिए स्वाध्याय अन्य महापुरुषों के अनुभवों और ज्ञान को बतलाता है। जिसके आधार पर हम शीघ्र ही अपने मार्ग में आगे बढ़ सकते हैं और सफलता प्राप्त कर सकते हैं। कभी–कभी ऐसा होता है कि उचित प्रयत्न करने के पश्चात् भी सफलता प्राप्त नहीं होती, तब बहुत दुःख होता है। 'ईश्वर प्रणिधान' इस दुःख से बचाता है।

इसलिए हम देखते हैं कि दोनों सामाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए यम एवं नियम परमावश्यक हैं।

संसार-रचना के पीछे उद्देश्य

डॉ. श्री ऋषिराम शर्मा, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

नित्यानन्दं परमसुखदं केवलज्ञानमूर्तिं।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यं।।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षीभूतं।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तम् नमामि।।

जबसे गुरुदेव के चरण कमलों का स्पर्श मिला है, तब से योग मेरे जीवन का परम-लक्ष्य बन गया है। एक ऐसा संस्कार दृढ़ीभूत हो गया है, जिसका चिन्तन, जिसका श्रवण और जिस पर वार्ता मुझे हठात् खींच लेती है। किन्तु पता नहीं किस कर्म संस्कार का प्रभाव या मेरे मन की कार्पण्यता मुझे प्रमाद के क्षेत्र में बांधे रखती है। अतः योग-साधना के नाम पर मैंने कुछ नहीं किया है, फिर भी अपनी बुद्धि, अपनी श्रद्धा तथा अपने मन की धारणा के अनुसार शास्त्रों के विचारों को आपके समक्ष रख रहा हूं। आशा है कि योग-जिज्ञासु मेरी निजी कमियों पर ध्यान न देकर योग के शास्त्र सम्मत रहस्यों को समझने तथा मनन करने में आनन्द लेंगे।

मानव-जीवन हमें ईश्वर की अमूल्य देन है, क्योंकि मानव-बुद्धि ही इस संसार के रहस्यों को जानने में समर्थ है। यह संसार कर्म-विपाक के परिणामस्वरूप मिला है। हम दुःख भोगते हैं, इसका दोषी ईश्वर नहीं, अपितु हमारे स्वयं के पाप-कर्म हैं। शास्त्र का स्पष्ट सिद्धान्त है कि जीवों के पाप-कर्म का भुगतान दुःख के रूप में होता है और पुण्य-कर्म का भुगतान सुख के रूप में होता है। जीव सुख चाहता है, किन्तु पुण्य कर्म करने में उसकी कोई रुचि नहीं और दुःख भोगने को तैयार नहीं, परन्तु दुर्वासनाओं के वशीभूत निरन्तर पाप-कर्म में यत्नपूर्वक रुचि रखता है, यही जीव के भाग्य की विडम्बना है। प्रायः लोग कहते हैं कि ईश्वर ने जीवों को माया के बन्धन में बाँधकर दुःख भोगने के लिए इस संसार की रचना क्यों की है? वह लोग इस रहस्य को समझने की कोशिश नहीं करते कि ईश्वर ने तो जीवों के दोनों हाथों में लड्डू दे दिए हैं। जैसा मन चाहे वैसा खाओ। किन्तु प्रकृति का एक अटूट नियम है कि परस्पर विरोधी चीजें साथ-साथ नहीं रहतीं। जहाँ प्रकाश है, वहाँ अन्धकार नहीं, जहाँ दिन है, वहाँ रात नहीं। जहाँ भोग है, वहाँ योग नहीं। अतः दोनों लड्डू का भरपूर आनन्द एक साथ नहीं। यदि भोगरूपी लड्डू के खाने में रुचि है, तो योग-समाधि वाला लड्डू गायब।

आचार्य रजनीश का "भोग से समाधि" वाला सिद्धान्त शास्त्र-विरुद्ध एवं भोगाकृष्ट बुद्धि का विलास मात्र है तथा आध्यात्मिक जगत में प्रवेश कराने में उसका कोई योगदान नहीं हो सकता है। अत: मैं आपको शास्त्रीय सिद्धान्त समझाना चाहता हूँ, जिससे कपोल-कल्पित बातें बुद्धि को कलुषित न करें। भगवान् पतंजलि ने योगसूत्र में कहा है कि-

प्रकाशस्थितिक्रियाशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगाऽपवर्गार्थं दृश्यम्।

अर्थात् त्रिगुणात्मक दृश्य-जगत की रचना के पीछे दो उद्देश्य हैं-एक है भोग देना और दूसरा है मोक्ष देना। जब जीव बहिर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा इस दृश्य-जगत को देखता है तो यह भोग देता है और जब अन्तर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा इस दृश्य-जगत का अनुभव किया जाता है, तब यही दृश्य-जगत योग विद्या के प्रकाश से मोक्षदाता बन जाता है। उपनिषद् भी इसकी पुष्टि करते हैं कि-

पराञ्चिखानि वितृणत् स्वयंभू:,
तस्मात् परान्पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीर: प्रत्यगात्मानमैच्छत्,
आवृतचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।

अर्थात् परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है। अत: इनका स्वभाव बाह्य-जगत का अनुभव करना है। बहिर्मुखी इन्द्रियाँ बुद्धि के आवरण में कार्य करती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि बुद्धि बोधात्मक आत्मा-जीवात्मा की उपाधि धारण कर कर्ता-भोक्तापन के आवरण में विषयक सुख-दु:ख का अनुभव करती है। कर्मफल के परिणामस्वरूप स्थूल भोग उपस्थित होता है और बहिर्मुखी इन्द्रियों की वृत्तियों का उससे सम्बन्ध होता है और सुख-दु:ख की अनुभूति होती है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के पीछे केवल कर्म परिणाम है। कर्म का सिद्धान्त है कि-

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'

अर्थात् अच्छे-बुरे की भावना से युक्त कर्मों का फल निश्चय ही भोगना पड़ता है। यह दूसरी बात है कि बहिर्मुखी जीवों को स्थूल में चिरकाल तक भोगना पड़ता है और अन्तर्मुखी जीव सूक्ष्म में अल्पकाल में भुगतान कर लेते हैं। इस सुख-दु:ख के भुगतान में एक बात विचारणीय है कि-

कन्डूयमानेन यत् कन्डूसुखं,
स्यात् तत् किं भवेत् सुखम्।

पश्चात् यत्र महापीड़ा,

तथा वैषयिकं सुखम्।।

अर्थात् जिस प्रकार खुजली के रोग में खुजाने से सुख की अनुभूति होती है और अधिकाधिक खुजाने की प्रवृत्ति बनी रहती है किन्तु खुजाने के बाद रोग तथा कष्ट दोनों ही बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार बहिर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा विषय भोग में सुख की अनुभूति होती है, जिसे आनन्दाभास कहते हैं और सुख की वासना अधिकाधिक विषय की ओर मन को प्रवृत्त करती है, किन्तु परिणामस्वरूप भवरोग एवं नाना प्रकार के दुःखों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि–

परिणाम तापसंस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च सर्वं दुःखमेव विवेकिनः।

अर्थात् विवेक दृष्टि से देखा जाये तो बहिर्मुखी इन्द्रियों के सभी कार्य–व्यापार में दुःख ही दुःख भरा है। जब जीवात्मा विषय–सुख का भोग करता है, तो उसके परिणामस्वरूप विकारों की उत्पत्ति हो जाती है, जिनकी परिणति घोर दुःख तथा अज्ञानान्धकार में भटकने में होती है। प्रकृति के नियमानुसार अनेकानेक शारीरिक एवं मानसिक कष्ट हठात् आते हैं और इन परिणामी एवं ताप दुःखों से कर्त्ता भोक्तापन के आवरण के कारण कर्म संस्कार कर्माशय बनाते जाते हैं जो भावी योनियों के बीजों का भण्डार है। इसके अतिरिक्त सभी जीव राग–द्वेष की मदिरा के प्रभाव से गुणात्मक वृत्तियों मे परस्पर विरोध होने के कारण कलह–क्लेश से आक्रान्त रहते हैं। अतः सुखार्थी जीव सर्वत्र दुःखों के घनघोर काले मेघों से घिरा है और प्यासे मृग की भाँति मृग–तृष्णा में फँसा है। यह सब बहिर्मुखी इन्द्रियों की करामात है जो कि संसार का भोगार्थक स्वरूप है।

इस संसार रचना का दूसरा पक्ष है अपवर्ग, यही मोक्ष का दाता है। जब शास्त्रों का मनन करते रहने से, महापुरुषों के सत्संग से उनकी अमृतवर्षिणी वाणी के उपदेशों को सुनने तथा जप–स्वाध्याय के प्रभाव से बुद्धि बहिर्मुखी संसार की निस्सारता को समझ जाती है, तब जीव गुरु–चरणों का आश्रय लेता है, जहाँ उसके भवसागर में डूबते हुए भयाक्रान्त मन को विश्राम मिलता है। गुरुसेवा से मन का मलावरण हटता है और वह गुरु के आदेश से गुरु–मन्त्र की जप–साधना करता है। इस जप–साधना के प्रभाव से उसकी धारणा–शक्ति विकसित होती है और सतोगुणी प्रकाश का सूर्योदय होता है, जिससे उसका अन्तर्मुखी जगत प्रकाशित होता है। मनोवृत्ति अन्तर्मुखी होकर दृश्य–जगत के भोग–दृश्यों से हटने लगती है और मन में वैराग्य की किरण प्रवेश करती है और गुरुकृपा से शनैः शनैः एक अलौकिक प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है कि–

स्वाध्यात् योगमासीत,

योगात् स्वाध्यामामनेत्।

स्वाध्याय योगसम्पत्या,

परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् स्वाध्याय करते–करते सत्व वृद्धि से मनोवृत्तियाँ अन्तर्मुखी होती जाती हैं और अन्तर्जगत की अनुभूतियाँ आरम्भ हो जाती हैं जिससे जीव का योग में प्रवेश हो जाता है। योग में प्रवेश हो जाने के बाद ध्यान शक्ति का विकास होने लगता है जो पूर्व जन्मों के पापसमूहों को नष्ट करने में सक्षम है। इसके परिणामस्वरूप मन को अन्तरानुभूतियों का रस मिलने से वह जपस्वाध्याय में सहज प्रवृत्त होने लगता है। इस प्रकार स्वाध्याय से योग और योग से स्वाध्याय दोनों एक–दूसरे को पुष्ट करते जाते हैं और इसके परिणामस्वरूप रजोगुण तथा तमोगुण की कीचड़ के साफ हो जाने पर शुद्ध जल के समान स्वच्छ सतोगुण की भूमिका बनती है जिसमें परमात्मा का बिम्ब स्पष्ट दिखाई देने लगता है। यही अपवर्ग की ओर ले जाता है, क्योंकि जगदात्मा भगवान कृष्ण की वाणी है कि–

तेषां नित्ययुक्तानां,

भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं,

येन मामुपयान्ति ते।।

अर्थात् जो जीव निरन्तर युक्तमन से मेरा प्रेमपूरित हृदय से भजन करता है यानि जिसका मन प्रेमावेश में एकाग्र हो गया है, जिसका अन्तःकरण स्वाध्याय तथा योग की साधना से तमोगुण तथा रजोगुण के मलविकारों से परिमार्जित हो गया है, जिसकी बुद्धि मायामोह के आवरण से मुक्त होकर वैराग्य सम्पन्न हो गई है और जिसका पापपुंज गुरुकृपा से भस्म हो गया है, उसे ही मैं समाधि योग प्रदान करता हूँ जिसके द्वारा वह मेरे सच्चिदानन्द स्वरूप में लीन हो जाता है और तीनों बन्धनों को काटकर अपवर्ग के लक्ष्य को पा जाता है।

सूक्ष्म में निष्कर्ष यह निकला कि यह दृश्य जगत बहिर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा भोगरूप प्रकट होता है और अन्तर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा सत्वाकाश में अपवर्ग रूप प्रकट होता है।

मन में जैसी धारणा रहती है, मन जीव को उसी ओर खींच लेता है, क्योंकि–

यादृशा वासनामूला,

वर्तते जीवसंगिनी।

तादृशं वहन्ते जन्तुः,
कृत्याकृत्यविभौम्रमम्।।

अर्थात् कर्माशय के माध्यम से जीव की बुद्धि पर वासना का आभास निरन्तर पड़ता रहता है जिसके कारण मन उसी आभास से रंगित हुआ वृत्तियों की किरणों पर सवार होकर दृश्य जगत् में भ्रमण करता है और परिणामस्वरूप जीव अनेकानेक योनियों को धारण कर पाप–पुण्य के कर्मों का भोग भोगता है। अतः विचारणीय विषय यही है कि जब तुम ही भोग की दलदल में फँसने के लिए लालायित हो तो कौन तुम्हारी सहायता करे? यदि बन्दर ने छोटे मुख वाले बर्तन में लोभवश हाथ डालकर भोगरूपी दानों से मुट्ठियाँ भर ली हैं और वह अपनी मुट्ठी खोलने के लिए राजी नहीं है तो कोई उसे उस बन्धन से कैसे छुटाये। शास्त्रीय सिद्धान्त है कि–

''इच्छामात्रको बन्धः, तत्त्यागोः, मोक्ष उच्यते''।

अर्थात् जीव अपनी इच्छा से मायिक बन्धन में बँधा है, क्योंकि वह भगवान से भी सच्चे मन से मोक्ष की इच्छा नहीं करता, अपितु भोग प्राप्ति की ही प्रार्थना करता है, वह तो परम प्रभु करुणार्णव हैं जो भोग देने के साथ शनैः शनैः उसके हृदय में अपने लिए प्रेम उत्पन्न कर देते हैं और प्रेमाकर्षण के वशीभूत सकाम उपासना ही उसे अनजाने में अपवर्ग के पथ पर ले आती है। जगदात्मा श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि–

न मां दुष्कृतिनो मूढाः,
प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना,
आसुरं भावमाश्रिताः।।
चतुर्विधा भजन्ते मां,
जना सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी,
ज्ञानी च भरतर्षभ।।
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त,
एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थ–
महं स च मम प्रियः।

उदाराः सर्व एवैते,

ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।।

–गीता 7/15–16–17–18

अर्थात् जो जीव हठवशात् दुष्कर्मों में लगे हुए हैं, दूसरे जीवों को सताना ही जिनका स्वभाव बन गया है, जो रागद्वेष के मायावरण में आसुरी सम्पदाओं को मदिरा पीकर विमोहित हो गये हैं, ऐसे जीव अपवर्ग के पथ से बहुत दूर चले जाते हैं और उनके मन मेरे से पूर्णरूपेण विमुख हैं। ऐसे जीवों को तो अधमयोनियों में डालने के अतिरिक्त मेरे पास उनके कल्याण का कोई उपाय ही नहीं किन्तु जो जीव हठात् दुष्कर्मों में न लगकर पुण्य कर्म करते रहते हैं और अपनी इच्छापूर्ति के लिए मेरा भजन करते हैं ऐसे जीवों की चार श्रेणियाँ हैं, पहली वह जो पूर्वकृत पापकर्म के फलस्वरूप बहुत दुखी हैं और अपने दुख से मुक्ति पाने के लिए मेरी ओर आशाभरी दृष्टि से देखते हैं, दूसरे वह जो मायिक बन्धन को समझ गये हैं, भोगों की मृगतृष्णा से परेशान हो गये हैं तथा मुझे पाने की इच्छा बलवती हो गयी है।

तीसरे वह जो धन सम्पत्ति की कामना से मेरी उपासना करते हैं और चतुर्थ वह जो चिद्–जड़ ग्रन्थि का भेदन कर संशय रहित हो गये हैं और यथार्थज्ञान से कर्माशय को भस्म कर केवल मेरी भक्ति करते हैं। इनमें चतुर्थ श्रेणी का ज्ञानी तो मेरा ही स्वरूप है और मुझे अत्यन्त प्रिय है, किन्तु दूसरी तीनों श्रेणियों के जीव भी श्रद्धायुक्त होने के कारण कल्याण के भागी हैं और अन्ततोगत्वा अपवर्गपथ पर आ ही जाते हैं।

अतः यदि तुम भवसागर को पार करना चाहते हो, यदि इस दृश्य जगत की भोगरूपी कटीली झाड़ियों के भयावह जंगल में भटकने से मुक्ति पाना चाहते हो, यदि जन्म–मरण के अवर्णनीय दुख से छुटकारा पाना चाहते हो, यदि अतीन्द्रीय परम सुख को पाकर निहाल होना चाहते हो, तो इसका एकमात्र उपाय है आत्म–निवेदन। जब जीव अपने को योग–योगेश्वर महाप्रभु के चरणों में पूर्णरूपेण अर्पण कर देता है तो उसकी साधना की उसकी योग भूमिकाओं में प्रगति की जिम्मेदारी स्वयं महाप्रभु अपने ऊपर ले लेते हैं, भगवान कृष्ण स्वयं अपने मुखारविन्द से इसकी पुष्टि करते हैं कि–

ये तु सर्वाणि कर्माणि,

मयि संन्यस्य मत्पराः।

अनन्येनैव योगेन,

मां ध्यान्त उपासते।।

तेषामहं समुद्धर्ता,
मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ,
मय्यावेशित चेतसाम्।।

—गीता 12/6–7

अर्थात् जो जीव अपने सभी मानसिक एवं शारीरिक कार्य–कलापों को मेरे भरोसे छोड़कर केवल मुझी को जीवन का परम लक्ष्य मान लेते हैं और अव्यभिचारिणी भक्ति से मेरा चिन्तन करते हैं। मेरी ही सब प्रकार से उपासना करते हैं, उन सरल स्वभाव वाले जीवों को भवसागर से पार उतारने के लिए मैं तुरन्त नौका बन जाता हूँ, यानी उनके हृदय में योग–चक्र चला देता हूँ जिससे अलौकिक प्रकाश का उदय होता है और अविद्या का अन्धकार नष्ट होता जाता है और अपवर्गरूपी लक्ष्य का राजमार्ग दिखाई देने लगता है। विशेष कर ईश्वर ने मानव सृष्टि इसी उद्देश्य से बनाई है। जो इस उद्देश्य को न समझे, वह आत्मा हत्यारा है।

शक्तिचालिनी मुद्रा

शक्तिचालन मुद्रेयं सर्वशक्ति प्रदायनी।।

सिद्धासन से बैठकर दोनों हाथों से दोनों पैरों की एड़ियों को मूलाधार में जोर से दबावें, ठोड़ी हृदय में लगाकर जोर से श्वास प्रश्वास करें ताकि पेट की अंतड़ियों के दबाव व ढीला होने का प्रभाव मणिपुर–चक्र पर पड़े और उसी के साथ गुदा संकोचन–खोलन करे, इससे मूलाधार की अपान वायु की टक्कर मणिपुर की प्राणवायु पर पड़ने से सुप्त कुण्डलिनी जागृत होती है। इसका अभ्यास योगी को जितेन्द्रिय होकर लवण, खट्टा, तीखा वर्जित परिमित भोजन अथवा दुग्धपान करके काम, क्रोध, मोह, अहंकार रहित, त्यागवान होकर प्रतिदिन कम से कम चार घड़ी पर्यन्त करने से सुप्त कुण्डलिनी के चलायमान होने में सहायता मिलती है। सद्गुरु का निर्देश भी लेते रहें।

साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर

(श्री सद्‌गुरुदेव जी द्वारा)

प्रश्न–पूज्य गुरुदेव! कृपा करके आप बतलाइये कि इस घोर कलिकाल में इतनी जनसंख्या क्यों बढ़ती जा रही है? जब कि यह युग तम प्रधान है, फिर इतनी जनसंख्या बढ़ने का क्या कारण है?

उत्तर–हे वत्स! देखो! इसका कारण केवल एक ही है। जैसा कि–हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त है कि स्वर्गीय प्राणी "ते तं भुक्त्वा स्वर्ग लोकं विशालं, क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्ति" अर्थात् पुण्यात्मा जीव उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्यक्षीण हो जाने के बाद मनुष्य लोक में आकर जन्म ले लेते हैं। ठीक इसी प्रकार यही नियम निम्न नारकीय लोकों में वास करने वाले प्राणियों में भी लागू है। अर्थात् क्षीणे पापे मर्त्यलोकं विशन्ति वाली बात भी है। तीव्रतम नारकीय यातनाओं को भोगते भोगते जब पापकर्मी का अन्त होने लगता है तब वह प्राणी नरक वेदनाओं से छूटकर पुनः मनुष्य लोक में आकर जन्म ले लेते हैं और फिर यहाँ आकर अपनी अपनी वासनाओं के अनुरूप कर्म किया करते हैं। फिर जैसी जैसी जिसकी वासना होती है ये प्राणी वैसा ही कर्म विपाक तैयार कर लिया करते हैं। यह वृत्ति संस्कार चक्र अहर्निश चलता रहता है, जिसके कारण प्राणी जन्म और मरण के चक्र में पड़ा रहता है।

प्रश्न–हे गुरुदेव! जो प्राणी स्वर्गलोक से आते हैं उनका शील–स्वभाव कैसा हुआ करता है वे क्या खाते हैं क्या पीते हैं और उनका आचार–विचार कैसा होता है, तथा इसी प्रकार जो प्राणी नरक लोक से आते हैं उनका आचार–विचार एवं व्यवहार कैसा हुआ करता है, कृपा करके इस विषय को समझाइये। साथ ही यह भी बतला दीजिए कि कौन प्राणी स्वर्ग को जाता है और कौन नरक को जाता है और कैसे प्राणी मनुष्य लोक में रहा करते हैं।

उत्तर–हे पुत्र सुनो! तुम्हारी यह जिज्ञासा बहुत ही अच्छी है। अतः तुम्हें यह सब बातें निर्णयपूर्वक बतला रहे हैं। देखो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीन प्रकृति संभव गुण हैं। इन्हीं के आधार पर सकल सृष्टि चलती है। सारे संसार की रचना इन तीन गुणों के आधार पर ही होती है। जो लोग सतोगुण प्रधान होते हैं वे स्वर्गादि ऊपर के लोकों को

चले जाया करते हैं, रजोगुण प्रधान प्राणियों का जन्म मनुष्य लोक में हुआ करता है और जो जीव तमोगुण प्रधान होते हैं वे सब नारकीय यातनाओं को भोगा करते हैं। अखिल लोक पावन जगदात्मा श्रीकृष्ण ने एक ही श्लोक के अन्दर इन तीनों का वर्णन किया है। जैसे–

ऊर्ध्व गच्छन्ति सत्वस्था:,
मध्ये तिष्ठन्ति राजसा:।
जघन्य गुणवृत्तिस्था:,
अधो गच्छन्ति तामसा:।।

अर्थात् सत्वस्थ लोग ऊपर के लोकों में चले जाया करते हैं, रजोगुण प्रधान इस मनुष्य लोक में रहा करते हैं और निकृष्ट वृत्ति वाले लोग नीचे के लोकों में जाकर वास किया करते हैं।

प्रश्न–हे गुरुदेव! आपने कहा था कि हम स्वर्गलोक से आने वाले लोगों के गुण, शील, स्वभाव बतलायेंगे तथा नारकीय प्राणियों के गुण, शील, स्वभाव बतलायेंगे। अत: कृपा करके बतला दीजिए कि स्वर्ग से आने वाले प्राणियों का गुण, शील, स्वभाव कैसा होता है?

उत्तर–हे वत्स! श्री चाणक्य जी ने अपनी 'चाणक्यनीति' के सातवें अध्याय में इन दोनों प्रकार के प्राणियों के लक्षण लिखे हैं। सो तुम्हारे हित के लिये उसे यहाँ बतला रहे हैं।

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके,
चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे।
दान प्रसंगो मधुरा च वाणी,
देवार्चनं ब्राह्मण तर्पणश्च।।

अर्थात् स्वर्गलोक से आकर जन्म लेने वाले प्राणियों के अन्दर ये लक्षण हुआ करते हैं। उनकी प्रवृत्ति दान–पुण्य में अधिक रहती है, वाणी अत्यन्त मीठी होती है–वे मीठा बोल कर ही दूसरों को वश में कर लेते हैं, देवताओं की पूजा किया करते हैं और ब्राह्मणों का सम्मान करते हैं।

प्रश्न–हे गुरुदेव! ये लक्षण तो स्वर्ग से आने वाले प्राणियों के हुए किन्तु जो लोग नरक से आते हैं उनका शील स्वभाव कैसा होता है? कृपया यह भी बतला दीजिए।

उत्तर–हाँ हाँ! चिरञ्जीव! तुम धैर्य रखो हम वही बतला रहे हैं। देखो चाणक्य जी महाराज कहते हैं–

अत्यन्त कोप: कटुका च वाणी,
दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम्।

नीच प्रसंग: कुलहीन सेवा,
चिह्नानि देहे नरकास्थितानाम्।।

नरक लोक से आने वाले प्राणी अत्यन्त क्रोधी होते हैं, उनकी वाणी बहुत कड़वी होती है। उनके घर में सदा दरिद्रता का वास होता है, वे स्वजनों में वैर रखते हैं, नीच लोगों का संग करते है और कुलहीन लोगों की सेवा किया करते हैं। ये सब लक्षण नरक लोक से आने वाले प्राणियों में रहा करते हैं।

प्रश्न—परम पूज्य गुरुदेव! नारकीय प्राणी तो बहुत बुरे होते हैं। कृपा करके यह उपदेश दीजिये कि इस कलिकाल में जन्म लेकर हम लोग नारकीय यातनाओं से बच सकें और दिव्य देवलोक को भोग सकें।

उत्तर—हे पुत्र! नारकीय यातनाओं से बचने के लिये तुम चाणक्य जी के इस श्लोक को ही देख लो—

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात,
विषयान्विषवत्यज—
क्षमार्जवं दया शौचं,
सत्यं पीयूषवत्पिव।।

अर्थात् तुम यदि मुक्ति चाहते हो तो विषयों को विष की तरह छोड़ देना चाहिए, क्षमा, नम्रता, दया, पवित्रता और सत्य का अमृत के समान पान करो। इसके अतिरिक्त तुम्हें अपने अन्दर दैवी सम्पत्ति का विकास करना चाहिये। दैवी सम्पत्ति वाले व्यक्ति अवश्य ही स्वर्गलोक के अधिकारी बन जाते हैं।

प्रश्न—हे गुरुदेव! कृपा करके दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति को पृथक्-पृथक् समझाइये।

उत्तर—हे पुत्र! दैवी सम्पत्ति के लक्षण गीता के सोलहवें अध्याय में जगदात्मा श्री कृष्ण ने अपने मुखारविन्द से इस प्रकार बतलाये हैं—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञान—
योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च,
स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।
अहिंसा सत्यमक्रोध—
स्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।

दया भूतेष्वलोलुप्त्वं,

मार्दवं हीरचापलम्।।

तेजः क्षमा धृतिः,

शौचमद्रोही नातिमानिता।

भवन्ति संपदं दैवी-

मभिजातस्य भारत।।

अर्थात् निर्भयता, अन्तःकरण की शुद्धि, ज्ञानयोग में स्थिति का होना। दान, इन्द्रिय दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, क्रोध का अभाव, त्याग, शान्ति, दूसरों की निन्दा चुगली न करना, द्रोह न करना तथा अहंकार न करना ये दैवी सम्पत्ति वाले मनुष्यों के लक्षण हैं।

इसके अतिरिक्त आसुरी सम्पति वाले मनुष्यों के लक्षण इस प्रकार हैं-

दम्भो दर्पोभिमानश्च,

क्रोधः पारुस्यमेव च।

अज्ञानं चाभिजातस्य,

पार्थ संपद्मासुरीम्।।

अर्थात् पाखण्ड, दर्प, अभिमान, क्रोध, क्रूरता और अज्ञान ये लक्षण आसुरी सम्पति को प्राप्त हुए व्यक्तियों के हैं।

इसके साथ ही अगले श्लोक में आनन्दकन्द भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि दैवी सम्पत्ति ही मोक्ष का कारण है और आसुरी सम्पत्ति मनुष्य को बन्धन में डाले रखती है। यथा-

"दैवी सम्पद्विमोक्षाय,

निबन्धाय आसुरी मता।"

प्रश्न-हे गुरुदेव! यह तो ठीक है कि दैवी सम्पत्ति मुक्ति का कारण है और आसुरी सम्पत्ति बन्धन का कारण है। मैंने दैवी तथा आसुरी सम्पत्ति के लक्षण भी सुन लिये हैं, किन्तु अब मुझे कृपा पूर्वक ऐसा उपाय बतलाइये कि जिससे मन से आसुरी भाव निकल कर दैवी सम्पत्ति का उदय हो जाये और मेरी बुद्धि स्थिर हो जाये।

उत्तर-हे वत्स! योग ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य शनैः शनैः भूमिकाओं में विजय प्राप्त करता हुआ अपने उच्चतम लक्ष्य निर्बीज समाधि अर्थात् निस्त्रैगुण्यता को प्राप्त हो जाया करता है। ये जितने भी दैवी आसुरी सम्पत्ति के लक्षण हैं, यह सब का सब

त्रिगुण विस्तार है।

हे बच्चे! तुम योग के उच्चतम अधिकारी जान पड़ते हो। इसलिये तुम्हें निस्त्रैगुण्यता की ओर ही बढ़ना चाहिए। क्योंकि जब तक साधक त्रिगुण स्थिति में रहता है तब तक यह त्रिगुणात्मिका माया कभी न कभी उस पर अपना प्रभाव डाल ही देती है और तुम्हें निस्त्रैगुण्यता प्राप्त करने के लिये योगाभ्यास करना चाहिए। योगाभ्यास करने के लिए तप की बहुत बड़ी आवश्यकता है। भगवान व्यासदेव ने अपने भाष्य में बिल्कुल स्पष्ट कहा है–

''नातपस्विनो योगः सिध्यति।''

अर्थात् जो व्यक्ति तपस्वी नहीं है उसे योग सिद्ध नहीं होता।

प्रश्न–हे गुरुदेव! यह तो ठीक है कि तप के बिना योगसिद्धि नहीं होता किन्तु तप करने के लिये मुझे क्या–क्या आचरण करना चाहिए?

उत्तर–प्रिय वत्स! श्री मद्‌भगवद् गीता में आनन्द कन्द श्री कृष्णचन्द्र ने तीन प्रकार के तप बतलाये हैं जो इस प्रकार हैं–

(१) शारीरिक तप

देव द्विज गुरु प्राज्ञ,
पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च,
शारीरं तप उच्यते।।

देवता, ब्राह्मण, देरुदेव तथा विद्वान व्यक्ति का पूजन करना, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा का आचरण शारीरिक तप कहलाता है।

(२) वाङ्मय तप

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं,
प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव,
वाङ् मयं तप उच्यते।।

अनुद्वेगकर, सत्य, प्रिय और हितकारी वाणी का प्रयोग करना तथा स्वाध्याय परायण रहना वाङ्मय तप कहलाता है।

(३) मानस तप

मनः प्रसादः सौम्यत्वं,

मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो,
मानस उच्यते।।

मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, आत्म निग्रह और अन्तःकरण की शुद्धि का होना मानस तप कहलाता है।

अतः कल्याण कामी व्यक्ति को चाहिये कि वह उपरोक्त प्रकार से तपाचरण करता हुआ योगारूढ़ होने का प्रयास करता रहे। यही मनुष्य जीवन का चरत्र पुरुषार्थ है।

स्वरूपलय?

योगी पहिले अपनी इन्द्रियों का साक्षात्कार करे, फिर मन का करे, उसके बाद बुद्धि का साक्षात्कार और तदनन्तर आत्मसाक्षात्कार करें। किन्तु इस मार्ग में थोड़ी सी कठिनता है क्योंकि इन्द्रियों के सूक्ष्म धर्मों को समझना कठिन है। उससे भी बढ़कर मन और बुद्धि को समझना तो और भी कठिन है। और आत्म–साक्षात्कार तो उससे भी बहुत आगे की वस्तु है। दूसरा मार्ग सर्व साधारण के कल्याणार्थ हमारे आचार्यों ने वह बताया जिस पर चलने से हर व्यक्ति अपना कल्याण कर ही सकता है। इस मार्ग का संकेत योगाचार्य भगवान् पतंजलि महाराज ने 'वीतराग विषयं वा चित्तम्' कह कर किया है। अर्थात् वीतराग पुरुषों को हम अपना ध्येय बनाकर उनके मन में अपना मन, उनके चित्त में अपना चित्त, उनकी बुद्धि में अपनी बुद्धि और उनके अहंकार में अपना अहंकार विलीन कर दें तो थोड़े समय में ही समाधि–लाभ कर सकते हैं। उस स्थिति में उनकी उपार्जित सिद्धियाँ हमारी अपनी होंगी और कालान्तर में उनके स्वरूप में लय होकर हम कैवल्य–भाव को भी अवश्य प्राप्त हो जायेंगे।

मेरे गुरुदेव की सामर्थ्य

(एक आपबीती घटना)

–श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह एम. ए.

मीरजापुर जिले में कछवा के पास बरैनी नामक एक गाँव है। मेरे गुरुदेव योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज इस गाँव में प्रतिवर्ष लगभग एक सप्ताह के लिए आया करते थे। यह घटना फरवरी सन् 1967 की है जबकि गुरुदेव का आगमन सन्निकट था और उनके स्वागत की तैयारियाँ धूम–धाम से की जा रही थीं। गुरुदेव के आगमन के पूर्व हम लोगों में एक अत्यन्त उल्लास एवं उत्साह का वातावरण छाया हुआ था। प्रतिपल गुरुदेव का स्मरण बना रहता था। कल्पनाएँ उठा करती थीं कि गुरुदेव जब स्टेशन पर उतरेंगे तो उनका भव्य दर्शन देखने को मिलेगा, उनका चरण छूने को मैं ही पहले दौड़ूँगा, उन्हें अच्छे–अच्छे कीर्तन सुनाऊँगा, वे मेरी ओर कृपा दृष्टि फेरेंगे और मैं निहाल हो जाऊँगा, इत्यादि। गुरुदेव के आने की उत्सुकतापूर्ण प्रतीक्षा गुरु भक्ति के रस में सराबोर किये दे रही थी। किन्तु इसी बीच एक दिन शाम को जब मैं कालेज से घर आया–तब पिताजी, जिनकी उम्र लगभग 83 वर्ष थी, मृत्यु शय्या पर पड़े अन्तिम सांस ले रहे थे। मैं तो देखते ही अवाक रह गया। पूछने पर मेरे बड़े भाई ने बताया कि बस ये अधिक से अधिक एक या दो दिन के मेहमान हैं क्योंकि इन्हें लकवा लग गया है। मैं बड़ा दुःखी हो गया। इधर पिताजी के वियोग की सम्भावना की वेदना उधर सूतक के कारण गुरुदेव के चरण–स्पर्श से वंचित होने की सम्भावना इन दोनों मानसिक कष्टों ने मुझे किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना दिया। इसके तीसरे दिन गुरुदेव के आगमन की शुभ तिथि थी। उस दिन पिताजी की हालत और खराब हो गयी। उनका बोलना और हिलना–डुलना तो पहले ही बन्द हो गया था अब उनकी स्वास में खरखराहट आ गयी थी और उनकी नाड़ी भी बीच–बीच में रुक जाया करती थी। मैं विचार करने लगा जिस व्यक्ति ने अपना तीस वर्षों का आखिरी जीवन त्याग और तपस्यामय बना दिया था तथा ईश्वर का भजन, जप एवं ध्यान ही जिसका दिन भर का कार्यक्रम बना हुआ था तथा जो व्यक्ति प्रतिदिन सोने से पूर्व ईश्वर से इस प्रकार प्रार्थना किया करता था–

कृष्णत्वदीय पदपंकज पंजरान्ते।
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंस।।

प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कंठावरोधनदिधौ स्मरणंकुतस्ते।।

क्या उस व्यक्ति का सचमुच कंठावरोध हो गया है? मैं रो पड़ा। पिताजी की आखिरी हिचकी आने लगी। उनका प्राणान्त सन्निकट जानकर अनुभवी पड़ोसियों के परामर्शानुसार हम लोगों ने उन्हें चारपाई से उतारकर जमीन पर लिटा दिया। उस समय दिन के ढाई बज रहे थे। आधे घंटे बाद अर्थात् तीन बजे गुरुदेव का शुभागमन हमारे निकट के रेलवे स्टेशन 'कछवा रोड' पर होने वाला था। मैं अपने को रोक नहीं सका और भागता हुआ स्टेशन पर पहुँचा। उसी समय गाड़ी स्टेशन पर रुकी और एक डिब्बे से योगावतार गुरुदेव का दिव्य मुख–मण्डल दिखाई पड़ा। हम सैकड़ों गुरुभाई जी गुरुदेव के स्वागत के लिए वहाँ उपस्थित थे जय–जयकार के गगन भेदी नारों के साथ उनकी ओर दौड़ पड़े। सौभाग्य से पूर्व कल्पनानुसार मुझे गुरुदेव के गले में पहली माला पहनाने का अवसर प्राप्त हो गया। मैंने अतिभाव से श्री गुरुदेव जी के चेहरे की तरफ देखा। उसी समय गुरुदेव ने भी मेरे चेहरे पर एक प्रश्न सूचक दृष्टि डाली और फिर दृष्टि उठाकर अन्तरिक्ष की तरफ देखने लगे। मेरे साथ आए हुए अन्य गुरुभाई गुरुदेव को माला पहनाते जा रहे थे और चरण–स्पर्श भी करते जा रहे थे किन्तु गुरुदेव की दृष्टि लगी हुई थी शून्य आकाश पर। कुछ क्षणों के पश्चात् गुरुदेव की दृष्टि क्षितिज की ओर से हटी और एक बार फिर मेरे ऊपर पड़ी। उस दृष्टि में मुझे आश्वासन परिलक्षित हुआ। आश्वासन क्यों? क्योंकि मैं अपने मन में यह प्रार्थना कर रहा था कि हे गुरुदेव कम से कम अपने वरैनी, में प्रवास काल तक मुझे अपने चरण–स्पर्श से वंचित न कीजिए। यदि मेरे पिताजी मर जाते तो सूतक लग जाने के कारण मैं उनका चरण–स्पर्श न कर पाता। आश्वासन का भाव देखकर मुझे यह पूर्ण विश्वास हो गया कि पिताजी अभी नहीं मरेंगे मैं खुशी–खुशी गुरुदेव की सवारी के साथ कछवा बाजार पहुँचा जहाँ एक विशाल जुलूस बाजे–गाजे तथा रंग–बिरंगी झाँकियों के साथ उनके स्वागत की प्रतीक्षा कर रहा था। उसी भीड़ में मेरे बड़े भाईसाहब मुझे दिखाई पड़ गए। मैंने अत्यन्त आश्चर्य के साथ उनसे पूछा कि आप पिताजी को छोड़कर यहाँ कैसे आ गए? क्या उनकी दशा सुधर गयी? उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ हँसते हुए उत्तर दिया कि पिताजी में तो आश्चर्य जनक परिवर्तन आ गया। वे एकाएक बोल उठे कि मुझे चारपाई पर लिटा दो और गीता का ग्यारहवां अध्याय सुनाओ। पिताजी के इन वचनों को सुनकर मेरे हर्ष की सीमा नहीं रही। मैंने तत्काल उन्हें चारपाई पर लिटाया और गीता का ग्यारहवाँ अध्याय सुनाने लगा और वे बड़े ध्यान से सुनने लगे। जब यह अध्याय समाप्त हो गया तो पिताजी ने कहा कि गुरु जी

की सवारी कछवा में आ गयी है तुम भी जाओ और दर्शन कर आओ।''

हम दोनों भाई साथ–साथ जुलूस में रहे और जब कछवा से गुरुदेव की सवारी बरैनी के लिए रवाना हो गई तो हम लोग घर लौट आये। घर आने पर देखा कि पिताजी की वाणी पुनः बन्द हो गयी और वे चेतनाशून्य से होकर चारपाई पर पड़े हैं किन्तु साँस चल रही है। मुझे पुनः भय लगा और मैं गुरुदेव से उनके अस्थायी जीवन दान की प्रार्थना करने की अभिलाषा लेकर सायंकालीन सत्संग में भाग लेने के लिए बरैनी पहुँचा। मैंने गुरुदेव के चरणों में प्रणाम करके पिताजी की दशा का पूरा हाल कह सुनाया और हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि, ''हे प्रभो, ऐसी कृपा कीजिए कि जब तक आप यहाँ रहें मेरे पिताजी जीवित रहें जिससे कि मैं आपके चरण स्पर्श से वंचित न हो पाऊँ।'' इतना सुनकर गुरुदेव कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद मुझसे पूछ बैठे। ''लल्ला, तुम क्या चाहते हो?'' मैंने पुनः अपनी प्रार्थना दोहरा दी। तब श्री गुरुदेव ने कहा, ''लल्ला, जब तुम चाहोगे तभी बुड्ढा इस संसार से जाएगा और अब से उस बुड्ढे को किसी प्रकार भी शारीरिक तकलीफ न रहेगी।''

गुरुदेव द्वारा यह आश्वासन पाकर मैं निश्चिन्त हो गया और मैंने अपनी माँ से तथा अपने घर के अन्य सदस्यों से सारी बात बतला दी। किन्तु मेरे घर में कुछ सदस्य ऐसे भी थे जिन्हें गुरुदेव के आश्वासन पर पूर्ण विश्वास नहीं था। फिर भी जब घण्टे पर घण्टे दिन पर दिन बीतने लगे तो उन्हें भी विश्वास करना ही पड़ा। इधर पिताजी की हालत यह थी कि उनकी आँखें बन्द रहा करती थीं और एक गाढ़ निद्रा में सोये हुए व्यक्ति की भांति उनके श्वास–प्रश्वास नियमित रूप से आ जा रहे थे। देखने में ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो वे पूर्ण आराम की स्थिति में हैं। चार दिन इसी प्रकार बीत गए। पाँचवें दिन मेरी माँ ने मुझसे रोते हुए कहा, ''बेटा, जब तुम्हारे पिता को जाना ही है तो तीन दिन और इसी प्रकार उन्हें सुलाए रखने से क्या लाभ? गुरुजी से जाकर कह दो कि अब वे उन्हें जाने दें क्योंकि अब उन्हें देखकर मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है।'' मेरे भाईसाहब ने भी मुझसे कहा कि तुम तो आराम से कालेज में रहते हो और मुझे दिन और रात जाग–जागकर पिताजी की देख–भाल करनी पड़ती है। अतः यदि तीन दिन और बीतने पर उन्हें जाना ही है तो गुरुदेव से कह दो कि उन्हें अभी जाने दें।

मैं तत्काल गुरुदेव के पास पहुँचा। उस समय प्रातःकाल के नौ बजे थे। मैंने गुरुदेव से अपनी माता तथा भाई की प्रार्थनाएँ निवेदित कर दीं। गुरुदेव ने तत्काल मुझसे पूछा, ''परन्तु, लल्ला तुम क्या चाहते हो?'' मैंने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, ''जब वे लोग ऐसा

चाह रहे हैं तो मैं भी वैसा ही चाहता हूँ।" मेरे मुख से इन शब्दों के निकलते ही गुरुदेव हँस पड़े और उन्होंने तत्काल महाप्रभुजी के चित्र के सामने पड़ी हुई गुलाब की कुछ पंखुड़ियाँ अपने हाथों में उठा लीं और आँखें बन्द करके कुछ क्षणों तक मौन रहने के पश्चात् उन पंखुड़ियों को मेरे हाथों पर रखते हुए बोले, "लो, ये पंखुड़ियाँ जब तुम बुड्ढे के मुख में डाल दोगे तो बुड्ढा शांतिपूर्वक बिना किसी कष्ट के चला जायेगा।"

उस पुष्प प्रसाद को लेकर मैं तुरन्त घर वापस लौट आया और घर वालों को निर्देश दिया कि सब लोग नहा–धोकर खा–पीलो और जब सब लोग खा पीलेंगे तभी मैं यह पुष्प–प्रसाद पिताजी को दूंगा और पुष्प–प्रसाद को पाने के बाद ही वे महाप्रयाण करेंगे, इसके पहले नहीं। इतना सुनकर मेरे भाई साहब ने साश्चर्य पूछा कि यह कैसे हो सकता है? उनकी स्थिति तो जैसी पिछले चार दिनों तक थी, वैसी ही इस समय भी है। इस स्थिति में परिवर्तन हुए बिना मृत्यु कैसे हो सकती है?" मैंने कहा, "देखिए, क्या होता है।" जब परिवार के सभी सदस्य तथा मेरे पड़ोस के लोग स्नान और भोजन से निवृत्त हो गए तो सब लोग उस पुष्प प्रसाद के प्रभाव का परीक्षण करने के लिए मेरे घर के आँगन में एकत्र हो गए। आँगन में कुश का आसन और उसके ऊपर ऊन का आसन बिछा दिया गया। हम दोनों भाइयों ने पिताजी को चारपाई पर से उतारकर उसी आसन पर लिटा दिया। इसके पश्चात् मैंने पुष्प की उन पंखुड़ियों को पिता जी के होंठों पर रख दिया क्योंकि उनके दोनों होंठ बन्द थे। जिस समय मैंने पुष्प–प्रसाद उनके होंठों पर रखा उस समय दिन के पौने बारह बजे थे। पुष्प–प्रसाद देने के बाद हम लोग पिताजी का सबसे प्रिय भजन 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारी, हे नाथ नारायण वासुदेव' खूब जोर–जोर से तालियाँ बजाकर गाने लगे। पन्द्रह मिनट पश्चात् अर्थात् दिन के ठीक बारह बजे पिताजी की नाभि के नीचे एक स्पन्दन हुआ। उनका शरीर ढीला हुआ था अतः यह दृश्य सभी को दिखायी दे रहा था। स्पन्दन के साथ ही साथ नाभि से चार अंगुल नीचे एक गोला उमड़ा और धीरे–धीरे ऊपर की ओर बढ़ने लगा, फिर कण्ठ तक आया और मुख खुल गया और पुष्प की सारी पंखुड़ियाँ मुख के अन्दर चली गयीं और मुख फिर बन्द हो गया। इसके एक क्षण पश्चात् ही उनकी दोनों आँखें जो चार दिन से लगातार बन्द थीं, खुल गयीं और शरीर निष्प्राण हो गया। मैंने इस प्रकार की मृत्यु योगियों की घटित होते सुना था किन्तु एक गृहस्थ की इस प्रकार की मृत्यु केवल गुरुदेव के पुष्प–प्रसाद के बल से होती देखकर वहाँ एकत्रित समस्त जन–समुदाय आश्चर्य में डूब गया और लोग दौड़–दौड़कर उस शव के चरणों में प्रणाम कर करके अपने को धन्य मानने लगे।

सिद्धधाम : सिद्धगुफा-सवांई

डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, लखनऊ

रामनवमी का पुण्य पर्व भारतीय जनमानस के लिए प्रेरणा और कर्त्तव्य पालन का पर्व है, और यही शुभ दिन है जब योग-योगेश्वर महाप्रभु रामलाल जी का अवतार योगी राज अरविन्द, महर्षि दयानन्द और रामकृष्ण परमहंस की परम्परा में हुआ था। रामलालजी महाराज, जिन्हें उनका शिष्य परिवार 'प्रभुजी' के नाम से जानता है ने अमृतसर में जन्म लेकर अपनी कर्म-भूमि उत्तर प्रदेश को बनाया। ऋषिकेश तथा आगरा-फीरोजाबाद राजमार्ग पर सवांई ग्राम उनके पुण्य स्थल हैं, जहाँ 'श्री प्रभुजी' और उनके परमप्रिय शिष्य योग सम्पदा के धनी योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने रहकर अपनी दैवी सम्पदा से हजारों लाखों लोगों को केवल त्रयतापों से ही मुक्ति नहीं दिलाई बल्कि सिद्धयोग की दीक्षा और शक्तिपात के माध्यम से इन्हें श्रेय मार्ग का राही भी बनाया।

यद्यपि यह अज्ञात ग्राम सवांई योग-योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी के चरणारविन्दों से पवित्र हुआ था परन्तु वह एक विस्मृत सी घटना बन चुकी थी। ज्ञानगंज हिमालय के सिद्धाश्रम में बसने वाले महासिद्धों में से एक करुणार्णव श्री प्रभुजी ने विवेकानन्द की भाँति अपने शिष्य के रूप में स्थूल और सूक्ष्म जगत् की सिद्धियों के अधिष्ठाता अपने प्रिय शिष्य श्री चन्द्रमोहन जी को यहाँ भेजा जिन्होंने इस छोटे से ग्राम को सिद्धधाम के रूप में स्थापित ही नहीं वरन परिवर्धित करके देश-विदेश में प्रतिष्ठित भी किया। यहाँ से अष्टांग योग की कीर्ति प्रसारित हुई और अनेकानेक प्राणियों ने भौतिक और दैविक सम्पदा से अपने को कृत-कृत्य किया।

1938 में श्री प्रभुजी के निर्वाण के पश्चात् पूज्यपाद श्री चन्द्रमोहन जी ब्रह्मचारी ओमप्रकाश पालीवाल के परिवारीजनों के व अन्यों के आग्रह पर सिद्धगुफा सवांई आश्रम पधारे। उस समय इस आश्रम की गुफा पर किवाड़ भी नहीं थे। गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी ने गुफा में किवाड़ लगवाये उसका जीर्णोद्धार कराया तथा श्री प्रभुजी के चित्र की वहाँ स्थापना की।

कुछ समय यहाँ रहकर तथा योगसाधना से क्षेत्र के निवासियों को लाभान्वित करके श्रीयुत चन्द्रमोहनजी पुनः साधना हेतु ऋषिकेश चले गये। परन्तु श्री प्रभुजी की इच्छा तो इस गुफा को सिद्धपीठ बनाकर योग की गंगा बहाना थी अतः उन्होंने एक उच्च संस्कारी बालक

श्री रघुनन्दन प्रसाद (जो बाद में टाटवाले बाबा के नाम से विख्यात हुए) यहाँ भेजा और गुरुदेव की उन पर कृपा दृष्टि हेतु।

बस फिर क्या था एक और एक ग्यारह की कहावत चरितार्थ हुई। श्री गुरुदेव ने यहाँ बाग में अपने लिए पर्णकुटी बनाई और टाट बाबा एवं अन्य ब्रह्मचारियों ने पेड़ पौधे लगाकर इसे आश्रम का स्वरूप प्रदान किया। चूँकि आश्रम में पानी की व्यवस्था नहीं थी अतः कूप निर्माण हुआ। पहले यह गुफा 'बाबा की गुफा' कहलाती थी परन्तु श्री गुरुदेव ने इसे 'सिद्धगुफा' नाम प्रदान किया। इसके साथ ही श्री गुरुदेव ने प्रातःकाल से मध्यान्ह दो बजे तक लोगों को योग साधन कराना प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी की कृपा से इससे सभी को लाभ प्राप्त होने लगा। अतः ग्राम निवासी एक साधक काशीराम पुजारी के मन में शंका हुई कि यहाँ सभी को फायदा क्यों होता है? श्री गुरुदेव की प्रेरणा से उन्होंने ध्यान में देखा कि गुफा के सामने श्री प्रभुजी विराजमान हैं और उनके प्रभा मण्डल की किरण जिस जिस को छू जाती है वह ठीक हो जाता है। दूसरे शब्दों में 'सिद्धगुफा' योगासन व साधना केन्द्र के अतिरिक्त सिद्ध कृपा केन्द्र के रूप में भी जानी जाने लगी।

यह योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी के अथक प्रयासों और निरन्तर साधना का फल रहा कि जहाँ कुछ पेड़–पौधे और एक कुटी मात्र थी जिसका रास्ता भी अनजाना व अपरिचित था आज वहीं 4–6 बड़े हाल और लगभग 100 कमरे, गौशाला भवन आदि बने हैं जहाँ रामनवमी मेले पर देश–विदेश से हजारों विभिन्न व्यवसायों में लगे छोटे–बड़े यात्री प्राचीन भारतीय योग शास्त्र का साकार रूप देखते हुए एकत्र होते हैं।

इस सिद्ध आश्रम की महत्ता और गरिमा बढ़ाने वाले युग–पुरुष योगिराज चन्द्रमोहन जी के व्यक्तित्व की चर्चा के अभाव में यह लेख अधूरा ही होगा। यद्यपि यह गुफा श्री प्रभुजी की निवास स्थली रही, परन्तु इसे तीर्थस्थल बनाने का श्रेय श्री गुरुदेव को ही है। श्री गुरुदेव एक ओर जहाँ प्राचीन भारतीय संस्कृति के ज्ञाता थे वहाँ वे 'पतंजलि योगदर्शन' और श्रीमद्‌भगवद् गीता के प्रकांड विद्वान थे वस्तुतः सच्चे अर्थों में निष्काम कर्मयोगी भी थे।

उनका समस्त पुरुषार्थ श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में समर्पित था। वे अपने समस्त कार्यों का प्रेरणा श्रोत और कर्त्ता श्री प्रभुजी को ही मानते थे। उनके ही शब्दों में–'मेरे जीवन में जो प्रकाश है वह उन्हीं कृपा–निकेतन का है इसलिए जो भी क्रियायें मेरे जीवन में हो रही हैं, वे सभी उन्हीं कृपामय के चरण कमलों में अर्पित हैं।' श्रीगुरुदेव का स्वभाव

बड़ा कोमल और सरल था। गुणों का क्या बखान करें दया, क्षमा, शान्ति, सरलता, सन्तोष ज्ञान, वैराग्य सभी गुणों का मणिकांचन संयोग ही तो थे वे। उनके पास आने वाले किसी व्यक्ति को कभी यह रंचभर अनुभूति नहीं हुई कि वह उपेक्षित है। सभी को ऐसा लगता था मानो वह ही श्री गुरुदेव की कृपा और स्नेह का निकटस्थ भाजन है।

आप जन्मजात सिद्धपुरुष थे। धोती–कुर्ता के सादा वेष में रहकर उन्होंने यश आकांक्षा रहित प्रवृत्ति का परिचय दिया। दीन–दुखियों के कष्ट निवारण और योगमार्ग में अग्रसर कराने हेतु उन्होंने लगभग 50 वर्ष तक सिद्धगुफा सवांई में निवास कर इसे लोक प्रसिद्धि प्रदान की, जहाँ की रज, प्रसाद के रूप में, त्रय ताप नसावनी बनी। 'सिद्धयोग' पत्रिका का 23 वर्षों तक निरन्तर विज्ञापन रहित मासिक प्रकाशन कराकर उन्होंने योग के प्राचीन सिद्धान्तों की सरल शब्दों में व्याख्या की और जनमानस में योग के प्रति सम्मान और लगाव पैदा किया।

श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में आने का सौभाग्य मुझे 1956 में मिला था। तब से निरन्तर उन करुणासागर की कृपा से कृतकृत्य होता रहा हूँ। प्रारम्भ में उनको देखकर (उन दिनों वे दाढ़ी भी नहीं रखते थे) मुझे उनमें आस्था नहीं हुई। परन्तु उन्हीं दिनों एक भैरव सिद्ध तांत्रिक ने श्री प्रभुजी के चित्र को देखकर बताया कि–'ये तो ऐसे पावरहाउस हैं जहाँ से प्रकाश मिलता है बल्ब बनने की देर है, जो जुड़ेगा प्रकाशित हो जायेगा' मेरे शुभ संस्कार थे–उनकी अनेकों कृपाओं को देखा। सन् 1971 की 19 जून को शाम 6 बजे दिन के प्रकाश में घात (हंडिया) से पिताश्री की रक्षा एक देखा हुआ अनुभूत सत्य रहा। श्री गुरुदेव को लोभ, क्रोध और अभिमान छू तक नही गया था।

उनकी उपस्थिति सवांई आश्रम को सार्थक बना देती थी। प्रातः–सायं का सत्संग, योग साधन, अपने प्रिय साधकों की व्यथा कथा प्रेम से सुनना और पुष्प प्रसाद या रज प्रसाद के माध्यम से अपनी संकल्प शक्ति द्वारा उन्हें पीड़ा मुक्त करना उनकी दैनिक चर्या थी। प्रत्येक साधक के पत्र का उत्तर देकर उसे उचित सम्बल प्रदान करना अन्य कहीं देखने को नहीं मिला। त्रिपुरेश्वरी शक्ति पीठ के संस्थापक योगीराज डॉ. जितेन्द्र चन्द्र भारतीय के शब्दों में–'वे सिद्धयोगी सिद्धपुरुष' थे। उनकी वाणी जहाँ स्नेहसिक्त थी वार्ता शैली और हास्य–विनोद द्वारा वातावरण को आनन्दमय और जीवन्त बनाये रखते थे। एक ओर उन्होंने अपने इस गुरुधाम को उच्चकोटि का सिद्ध पीठ बनाने में, अपना सारा पुरुषार्थ उड़ेला वहीं दूसरी ओर दूरगामी यात्रायें करके और योग शिविर लगाकर सिद्धान्त, व्यवहार और क्रियाओं के माध्यम से उन्होंने योग–प्रचार की यात्रा को जन–जन तक पहुँचाया।

योग की लोक कल्याणकारी विधियों को जनजीवन में प्रतिष्ठा कराने हेतु उन्होंने शक्तिपात करके अश्रम को सुविख्यात राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आकर्षण का केन्द्र बना दिया था। अनेक बार अखिल भारतीय योग सम्मेलन और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के अध्यक्ष पद की गरिमा को उन्होंने बढ़ाया पर इस सबका श्रेय स्वयं न लेकर अपने गुरु प्रभु श्री रामलाल जी को ही दिया।

उनके महाप्रयाण की प्रतीति मुझे बड़े अजीब रूप में हुई। मैंने श्री प्रभुजी का पहली बार खुली आँखों अपने कक्ष में प्रवेश कर कुर्सी पर बैठते और दो मिनट पश्चात् व्यग्रता से कमरे के दो चक्कर लगाकर वापस लौटते देखा जिसे मैं किसी भवितव्य की आशंका के रूप में न समझ सका। इसके दो दिन बाद ही श्री गुरुदेव के महाप्रयाण का समाचार जानने में आया।

आज यह सिद्धपीठ श्री गुरुदेव के सामर्थ्यवान सुयोग्य शिष्य समूह के द्वारा पालित–पोषित सभी यौगिक क्रियाकलापों की परम्परा को यथावत् जनचेतना और जागरण केन्द्र के रूप में स्थापित किये हुए है। अन्त में श्री दिव्य के शब्दों में सिद्धगुफा की पावन धरती को प्रणाम करते हुए मैं इस लेख को विराम देना ठीक समझ रहा हूँ।

सिद्धगुफा की उस धरती को,
आओ करें प्रणाम,
भस्मी भूत यहाँ हो जाते,
विषय, वासना, काम,
जिसके कण–कण में रमते हैं,
योगेश्वर प्रभु राम।

भगवत्कृपा/गुरुकृपा

माया की यह सृष्टि महत्ब्रह्म के अहंकार से प्रकट होती है, बुद्धिबोधात्मक अहंकार से ही इसका संचालन होता है तथा अहंकार के उत्पत्ति स्थान में ही लीन होती है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण का स्पष्ट आदेश है कि–

तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृतिः प्रसृता पुराणी।।

अर्थात् कल्याणकांक्षी को उस परमात्मा की ही शरण में जाना चाहिए जो इस सृष्टि का आदिस्रोत है और जिसके आधीन मायाशक्ति ने इसकी रचना की है। इस संदेश का यही तात्पर्य है कि जिस माया की अनन्त शक्तियाँ हैं, अनन्त प्राणादि भाव हैं तथा अनन्त विस्तार है, उससे मुक्ति किसी भी अहंकारयुक्त साधन अथवा पुरुषार्थ से संभव नहीं है। उपनिषदों में इस रहस्य का पर्दाफाश किया गया है कि–

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो वृतानि।
भूतं भव्यं यच्च वेदाः वदन्ति।।
अस्मात् मायी सृजते विश्वमेतत्।
तस्मिन् चान्यो मायया सन्निरुद्धः।।

(श्वेता. उप. 4/9)

न चक्षुसा ग्रह्यते नापि वाचा।
नान्यैः देवैः तपसा कर्मणा वा।।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वः।
ततस्तु तं पश्यते निश्कलं ध्यायमानः।।

(मुण्डक उप. 3/1/8)

अणोरणीयान् महतोमहियान्
आत्मा गुहयां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतु पश्यति वीतशोकः।
धातुः प्रसादात् महिमानमीशम्।।

(श्वेता. उप. 3/20)

अर्थात् परमात्मा की यह विचित्र लीला है कि अपनी ही माया से अपने ही हिरण्यगर्भ स्वरूप से इस विश्व को प्रकट करके इसके संचालन के लिए वेदों, यज्ञों, तप तथा वृतों एवं अनन्त मायिक भावों का विधान बनाकर स्वयं को भी अन्य सा अज्ञानी भोक्ता के रूप में अनन्त योनियों में लोकव्यवहार का नाटक किया। अपने को ही दो श्रेणियों में बाँट दिया। एक

जीवात्मा तथा दूसरी परमात्मा। जीवात्मा को मायाधीन बना दिया तथा परमात्मा को मायाधीश होकर विश्व का शासनकर्त्ता बना दिया। अपनी माया शक्ति को भी दो रूपों में विभक्त कर दिया, प्रथम रूप अविद्या है जोकि जीवसृष्टि का कारण है तथा द्वितीय रूप विद्या है जोकि परमात्म भाव का कारण है। वेदों में इस रहस्य का संकेत दिया है कि—

जीवं कल्पयति पूर्वं ततो भावान् प्रथग्विधान्।
वाह्यानाध्यात्मिकांश्चैव यथा विद्या तथास्मृतिः।।
कल्पयति आत्मनात्मानमात्मा देवः स्वमायया।
स एव बुध्यते भेदान् इति वेदान्तविनिश्चयः।।

अर्थात् यह वेदान्त शास्त्र का निर्णय है कि परमात्मा ने पूर्व में प्राणादि माया के अनन्त भावों की कल्पना कर जीवसृष्टि बनायी तत्पश्चात् अविद्यारूपी स्मृति से लोकव्यवहार की बहिर्मुखी प्रवृत्ति तथा विद्यारूपी स्मृति से आध्यात्मिक भाव प्रकट किया। पुनः अपनी विद्यारूपी माया से अपने को भी प्रकट किया जिससे ईश्वर के रूप में मायाधीश होकर माया के विधान को क्रियान्वित किया। इन दो रूपों में ईश्वर सत्यस्वरूप तथा ज्ञानस्वरूप है और जीव सत्यस्वरूप पर विकल्पित अज्ञानस्वरूप है। परमात्मा का स्वरूप प्रकृति के सूक्ष्मतर तत्त्वों से भी सूक्ष्मतम है तथा प्रत्येक जीव की हृदयग्रन्थि में गुप्त है। उसका साक्षात्कार न तो चक्षु से सम्भव है, न वाणी से, न अन्य मनसहित ज्ञानेन्द्रियों से और न बुद्धि से। इस उद्देश्य के लिए तो उसी परमात्मा की कृपा से प्राप्त प्रज्ञाचक्षु की आवश्यकता होती है। यह प्रज्ञाचक्षु तत्वज्ञान का प्रसाद है जोकि विशुद्ध चित्त में परमात्मकृपा से परमात्मा के दिव्य स्वरूप से प्रकट होता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने भी इसका संकेत दिया है कि—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।
एवं सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येनमामुयान्ति ते।।
तेषामेव अनुकम्पार्थमहं अज्ञानजं तमः।
नाशयामि आत्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।

अर्थात् प्रज्ञाचक्षुरूपी ज्ञान के समान उत्कृष्ट तथा पवित्र इस संसार में कोई तत्त्व नहीं है। किन्तु वह अहंकारयुक्त पुरुषार्थ से नहीं प्राप्त होता अपितु उचित समय पर स्वयं ही परमात्मा का कृपाप्रसाद के रूप में प्राप्त होता है। इसी को योगसंसिद्धि कहा गया है। अतः जो जीव श्रद्धाभक्ति से युक्त योगी होकर परमात्मा की उपासना करते हैं उन्हीं को यह योगसिद्धि वाला बुद्धियोग प्रसाद के रूप में प्राप्त होता है। उन्हीं के लिए परमात्मा की कृपा

से अज्ञानजनित अविद्या का अंधकार नष्ट होता है जिससे कि हृदयस्थ ज्ञानस्वरूप परमात्मा से ज्ञानचक्षु की प्राप्ति होती है। यह ज्ञानस्वरूप परमात्मा ही सद्गुरु है, क्योंकि शास्त्र का कथन है कि–

नास्ति तत्वं गुरोः परम्।
गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
सामर्थ्यं तत्प्रसादेन केवलं गुरुसेवया।।
यत्र अवच्छेदनार्थे कालो नोपवर्तते सः गुरुः।
गुरुणामपि गुरुः कालेनान्वच्छेदात्।।

अर्थात् सद्गुरु ही विशुद्ध परमब्रह्म है अतः गुरु से उत्कृष्ट कोई अन्य सत्ता है ही नहीं। गुरुकृपा से ही तीनों महादेवों ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को सृष्टि की रचना, सृष्टि पर शासन तथा सृष्टि के प्रलय की सामर्थ्य प्राप्त हुई है। इस संसार में परमात्मा कालातीत होने के कारण गुरुओं का भी गुरु है। अतः गुरु वह सत्ता है जो काल की सीमा से भी परे कालातीत है। इसीलिए उपनिषदों में गुरु को परमात्मा का ही मायातीत स्वरूप माना है और उसी रूप में गुरु की वन्दना की है कि–

येनेरिताः प्रवर्तन्ते प्राणिनः स्वेषु कर्मसु।
तं वन्दे परमात्मानं स्वात्मानं सर्वदेहिनाम्।।
यस्य पादांशुसम्भूतं विश्वं भाति चराचरम्।
पूर्णानन्दं गुरुं वन्दे तं पूर्णानन्दविग्रहम्।।

अर्थात् सृष्टि के समस्त प्राणियों की बुद्धिरूपी गुफा में स्थित आत्मा के रूप में विद्यमान उस परमात्मा की हम वन्दना करते हैं जिसकी प्रेरणा से सभी प्राणी अपने–अपने कार्यों में लगे हैं। हम उस ज्ञानविज्ञानस्वरूप आनन्दमूर्ति गुरुदेव की भी वन्दना करते हैं जिसकी चरणरज से उत्पन्न चराचर जगत प्रकाशित हो रहा है और जो परमात्मा का ही शुद्ध स्वरूप है। भगवान श्रीकृष्ण इस सत्य की स्वयं पुष्टि करते हैं कि–

सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।

अर्थात् जो योगयुक्त महात्मा मुझमें एकत्वभाव से मेरी उपासना करते हैं वह वस्तुतः शरीरधारी होते हुए भी मेरे दिव्य स्वरूप में ही रमण करते हैं। शिवसंहिता में भगवान शिव का भी यही निष्कर्ष है कि योगसिद्धि तथा ज्ञानचक्षु की प्राप्ति सिद्धगुरु की कृपा के बिना सम्भव नहीं है। किन्तु सिद्धगुरु की संगति शुद्ध अन्तःकरण वाले साधक को पुण्यों के फलस्वरूप होती है। भगवान शिव का कथन है कि–

पश्चात् पुण्येन लभते सिद्धेन सह संगतिम्।
ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।।
ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम्।
योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षाय भवेत् विधे।।

अर्थात् योगसाधना करते–करते जब अत्यधिक पुण्यों का अन्तःकरण में संचय हो जाता है तब पुण्यफल तथा विशुद्ध अन्तःकरण वाले साधक को परमात्मा की कृपा से सिद्धगुरु की प्राप्ति होती है। सिद्धगुरु के शक्तिपात से ही योगसिद्धि प्राप्त होती है अन्यथा नहीं। योगसिद्धि से ज्ञानचक्षु की प्राप्ति होती है जिससे अविद्याजनित संसार नष्ट होता है, क्योंकि कर्मबन्धन तथा गुणबन्धन दोनों ही क्षीण हो जाते हैं। योग सिद्धि के द्वारा आत्मसाक्षात्कार के बिना शब्दज्ञान से मोक्ष नहीं मिलता। शास्त्रों का यह स्पष्ट निष्कर्ष है कि कृपा के बिना ज्ञानचक्षु की प्राप्ति सम्भव नहीं। सद्गुरु परमात्मा का ही दूसरा रूप है अतः परमात्मा की कृपा गुरुदेव के शक्तिपात में निहित रहती है। प्रकृति तथा पुरुष के अत्यन्त गुप्त रहस्यों को केवल ज्ञानचक्षु से ही जाना जा सकता है। अतः ज्ञानचक्षु के जिज्ञासु को यह सत्य सदैव स्मरण रहना चाहिए कि जो गुरुदेव का प्यारा है वही परमात्मकृपा का अधिकारी है और गुरुदेव का प्यारा वही होता है जिसमें अव्यभिचारिणी अनन्य भक्ति के लक्षण हैं जिसका स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में बताया है कि गुरुभक्ति के बिना ज्ञानचक्षु सम्भव ही नहीं। शास्त्रों के रहस्य उसी को प्रकट होते हैं जिनके हृदय में परमात्मा तथा गुरुचरणों में समानभाव से अनन्य प्रेमाभक्ति है। इसमें व्यभिचार नहीं है क्योंकि दोनों का सत्यस्वरूप एक ही है। भगवान श्रीकृष्ण की दृष्टि से ऐसे भक्तों के लक्षण हैं कि–

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिः यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तोयः स चमे प्रियः।।
अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः मे प्रियः।।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः।।
तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् मे प्रियो नरः।।

(गीता 12/13–19)

अर्थात् ज्ञानचक्षु के अधिकारी साधक में गुरुकृपा/ परमात्मकृपा पाने के लिए जिस अनन्य भक्ति की परमावश्यकता है उसके यह लक्षण हैं। अनन्य भक्ति का अर्थ है–

''अनन्यता लोकवेदव्यापारन्यासः।।''

इसका तात्पर्य है कि अनन्य भक्त की मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ लोकव्यवहार तथा वेदोक्त धर्मव्यवहार में पूर्णतः निर्लिप्त तथा निरासक्त रहती है। यह संसार तथा उसमें होने वाला व्यवहार सब कुछ मनोवृत्तिमय है। यदि मनोवृत्ति अपने आराध्य में प्रेमरूपा है तब संसार में आसक्ति, मोहममता अथवा भोगभावना स्वतः समाप्त हो जायेगी। जैसा कि अचेतावस्था अथवा सुषुप्ति में मन तथा बुद्धि के प्राण में लय हो जाने पर संसार नहीं रहता, केवल तमोगुणी आवरण के कारण अज्ञानावस्था रही है। किन्तु प्रेमरूपा वृत्ति में सतोगुण के प्रकाश के कारण ज्ञानावस्था बनी रहती है। इस स्थिति में साधक निरोध समाधि जैसे चित्त में अपने आराध्य देव के दिव्य दर्शन करता है। समस्त प्राणियों में यह उसी स्वरूप को देखता है। अतः किसी से द्वेष नहीं करता, सब में मित्रभाव रहता है, करुणा की वर्षा होती है, किन्तु सतोगुणी ज्ञान में सांसारिक पदार्थों में मोहममता तथा कर्तापन का अहंकार नहीं रहता, कामनारहित होने से सन्तुष्ट तथा योगनिष्ठ रहता है, मन तथा बुद्धि अपने आराध्य देव में समर्पित होने के कारण अक्षय सुख का अनुभव करता है, किसी अन्य से वैरभाव अथवा कैसी भी अपेक्षा न होने के कारण शुद्ध चित्त में भोगवासना के विकारों से मुक्त रहता है, मन विकल्परहित तथा शान्त रहता है, शुभ–अशुभ, सुख–दुःख, मान तथा अपमान, सर्दी–गर्मी अथवा राग–द्वेष, आदि सभी प्रकार के द्वन्द्वों से मुक्त होकर यदृच्छालाभसन्तुष्ट, एकान्ती मौनव्रत–धारी, घर–परिवार की चिन्ता से मुक्त तथा एकाग्रचित से जो परमात्मा की भक्ति में प्रतिक्षण निमग्न है वही परमात्मकृपा/गुरुकृपा का अधिकारी है। शास्त्र का यह स्पष्ट निर्देश है कि–

यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्मैः ते कथिताः ह्यर्थाः प्रकाशन्तेमहात्मनः।।

अर्थात् जिसकी परमात्मा तथा गुरुदेव में समानभाव से अनन्यभक्ति है उसी के चित्त में अध्यात्मप्रसाद प्रकाशित होता है। यही विद्या तथा अविद्या स्वरूपणी माया का निश्चित नियम है।

सर्व सिद्धि का मूल : गुरु-प्रसन्नता

-ब्रह्मलीन स्वामी मुक्तानन्द महाराज

सिद्ध विद्यार्थी यह न भूलें कि मानव केवल अपने पुरुषार्थ से ही परमार्थ में पूर्णता नहीं पा सकता। व्यवहार में भी देखा जाता है कि मनुष्य पुरुषार्थ के साथ-साथ अन्य जनों की सलाह लेता रहता है। जो स्वयं से नहीं हो पाता वह दूसरे से सीख लेता है। शक्तिपात अथवा क्रिया योग में, सिद्ध विद्या अथवा कुण्डलिनी महायोग में गुरुकृपा ही तरणोपाय है। इस मार्ग में गुरु के मार्ग दर्शन बिना पूर्णता पाना प्रायः असम्भव है।

आधुनिक समय के स्वतन्त्रवाद और स्वच्छन्दवाद सिद्ध विद्यार्थियों के लिए बड़े विघ्न है। सिद्ध मार्ग का विद्यार्थी यदि 'स्वतन्त्र' शब्द के अर्थ का अनर्थ करके, गुरु आज्ञा पालन में आलस्य, प्रमाद, अल्पश्रद्धा, गुरु में दोष दर्शन, आदि करता है तो उसकी शक्ति कालान्तर में नष्ट हो जाती है। जब कोई राजा आता है तो अपने सभी ऐश्वर्य के साथ आता है और जिस घर में रहता है उसको सम्पन्न सुशोभित बनाता है। घर के चारों तरफ आनन्द, सौन्दर्य, महिमा बिखेर देता है और जाते समय सभी ऐश्वर्य को साथ लेकर चला जाता है। ठीक वैसे ही सिद्ध विद्यार्थियों में क्रियात्मक रूप से रहने वाली शक्ति जिन गुरु से प्राप्त है, प्राप्ति के बाद जिनके शासन से वह शासित होकर उनमें कार्य करती है, उन सद्गुरु के विषय में यदि वे सन्देह, दोषदृष्टि, संकल्प-विकल्प करें तो वह सर्वज्ञ शक्ति क्या उन सिद्ध विद्यार्थियों में प्रसन्नता से रहेगी? इस सिद्ध मार्ग में कुण्डलिनी महायोग में **'गुरुकृपा हि केवलम्'** और **'गुरोराज्ञा हि केवलम्'** है।

मुक्तानन्द सत्य कहता है कि सब विद्याओं में, मोक्ष धर्म में और स्वस्वरूप विमर्श में श्री गुरुकृपा ही प्रधान है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-तुम्हारा पुरुषार्थ, तुम्हारा जप, तप, योग, साधन सबके सब तभी फलरूप होंगे जब श्री गुरुकृपा से लब्धिकाल का उदय होगा। साधकजन याद रखें कि वे अपने गुरु को जितना महान, श्रेष्ठ, पूर्ण सिद्ध, सामर्थ्यवान समझते हैं, श्री गुरु उतनी ही सामर्थ्य लेकर उनके साथ खड़े रहते हैं। तुम्हारे साधन की न्यूनाधिकता, तुम्हारी शक्ति का संकोच-विकास, तुम्हारी साधन-समाप्ति का समय, सभी तुम्हारी भावना पर निर्भर है। वस्तुतः तुममें प्रत्यक्ष ईश्वर की नाई गुरु के प्रति जितना प्रबल, जितना तीव्र भाव होगा उतना शीघ्र तुम सब कुछ पा सकोगे। उसमें देर नहीं लगेगी। इस विषय

में एक छोटी सी सत्य घटना कहता हूँ, जो साधक की श्रद्धा और भक्ति को बढ़ाकर उसकी इष्ट प्राप्ति में सहायक बन सकती है।

हाल ही के मेरे महाबलेश्वर के निवास–काल में आई.आई.टी. का एक विद्यार्थी मुझसे मिलने आया था। वह चार–पाँच दिन में ही कृपा पा के साधन करके, ध्यान सम्पन्न बन के अपने घर जाने को निकला। बम्बई जाते समय बारिश की वजह से उसकी मोटर बहुत लेट हो गई। पहुँचते–पहुँचते मध्य रात्रि हो गई। घर पर उसकी माताजी बड़ी व्याकुलता से राह देख रहीं थीं। सोचती कि अभी मोटर क्यों नहीं आई? रात्रि के दस बज गये तब माँ ने अपने प्यारे लड़के की राह देखना छोड़ दिया और वह अपने गुरुदेव से प्रार्थना करने लग गई। प्रार्थना करते–करते गुरुभाव में तन्मय हो गई। उस समय उसके गुरु सामने प्रकट होकर बोले, "अम्मा चिन्ता मत करो। तुम्हारा लड़का 12 बजकर 25 मिनट पर पहुँच जायेगा।" यह सुनकर वह निश्चिन्त हो गई, उसकी श्रद्धा के कारण गुरु के प्रकट होने से वह लड़के की राह देखना भूल गई और ध्यान में फिर से तन्मय हो गई तब फिर कुछ देर बाद किसी ने बाहर से पुकारा "अम्मा! अम्मा!" मैंने उठकर दरवाजा खोला और अपने बेटे को देख फिर घड़ी देखी। ठीक 12 बजकर 25 मिनट हुए थे तब क्या! वह बड़ी आश्चर्य चकित हो गई।

वह माता बाद में महाबलेश्वर आई थी अपने मुख से यह घटना सुनकर "गुरु प्रसन्नता ही सर्व सिद्धिप्रद है" इस विषय में मेरी लेख लिखने की इच्छा हो गई। सन्त तुकाराम महाराज का इस विषय में एक अभंग प्रसिद्ध है, जिसका आशय है कि श्री गुरु–चरणों में भावपूर्ण विश्वास रखने से सहज में अपने आप बिना कष्ट उठाये भगवान मिल जाता है इसलिए गुरु को भजो उनको अपने ध्यान में लाओ क्योंकि ईश्वर गुरु के पास रहता है।

भाव की महिमा महान होती है। यह एक बार भाव रखा फिर वह पलट जाये तो वही कुभाव हो जाता है। भाव ऐसा होना चाहिए जो अपने को विकसित करे। ऐसा भाव ही आस्तिक्य भाव कहा जाता है। जिसने एक बार भी क्रियाशीलाचित् शक्ति के प्रभाव को जान लिया उस सिद्ध विद्यार्थी में अपने अन्दर प्रकटरूप से रहने वाली चित् शक्ति में श्री गुरुदेव में अपने आत्मा में और संविद क्रीड़ा रूप इस जगत् में दृढ़ आस्तिक बुद्धि का उदय हो जाता है। फिर उसके चित्त मन बुद्धि के लिए अपने अन्दर की चिति शक्ति, अपने अन्तर का गुरुभाव अपने अन्तरात्मा के छोड़कर अकारण इधर–उधर जाना बहुत कठिन

हो जाता है।

श्री गुरु–चरणों के विषय में सन्त ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं–"हे सद्‌गुरु तत् और त्वम् रूपी दोनों सरण असि पद रूप में पूज लेने से साधक को प्राप्त कर लेने में और कुछ शेष नहीं रहता। यानी उसी को सब कुछ मिल जाता है। इसलिए सिद्ध 'मार्ग के साधकों! हृदय से सद्‌गुरु का सम्मान करो उनकी पूजा करो और उनसे हार्दिक प्रेम करो सर्व सिद्धियाँ तुम्हें सहज ही मिल जायेंगी। किसी जादूगर के समान फिर तुम्हें अल्पस्वरूप चमत्कार दिखाने की कभी जरूरत नहीं पड़ेगी। निगम का एक वचन है–

गुरुसन्तोषमात्रेण सिद्धि–
र्भवति शाश्वती।
अन्यथा नैव सिद्धिः
स्यादभिचारायकल्पते।।

अर्थात्–श्री गुरुदेव के सन्तोष मात्र से, एक क्षण में नष्ट होने वाली अल्पसिद्धि नहीं, बल्कि शाश्वत् सिद्धि प्राप्त होती है। आप कितना भी जाप करें, तप करें, ध्यान करें, दान करें, यज्ञ करें, गंगा सागर नहायें, लेकिन गुरु सन्तोष बिना सिद्धि हो ही नहीं सकती।

आजकल साधकों में जो दुर्बलता, साधन शिथिलता और स्फूर्तिहीनता दिखाई देती है उसका कारण गुरु की अप्रसन्नता ही रहती है। गुरु प्रसाद से ही बुद्धि में स्फूर्ति सर्व दुःखों का नाश और गुरु प्रसाद से ही साधन में रति होती है। ईश्वर प्रणिधान में भी तन्मयता भी गुरु द्वारा प्रदत्त कृपा प्रसाद से ही हो पाती है। इसी से समाधि प्राप्त होती है और इसी से प्रभु का साक्षात्कार होता है, इसलिए गुरु सन्तोष और गुरु प्रसाद से आपका हृदय खाली न रहे इसका सदैव प्रयत्न करना चाहिए।

जगत् में जिस किसी ने भी सिद्धि पाई है वह श्री गुरु–कृपा से ही पाई है गुरु से अनुगृहीत जीव ही परम स्वतन्त्र मुक्तात्मा बन जाता है। शाश्वत सिद्धि के लिए गुरु सन्तोष की बड़ी आवश्यकता है। गुरु बिना ही अथवा गुरु की कृपा के अभाव में ही मनुष्य दुःखी होता है और गुरु प्राप्त करके ही वह सुखी होता है। इसलिए गुरु में पूर्ण–समर्पण करके आप गुरुभाव को अपनाओ। थोड़ा सा ध्यान हुआ, थोड़ी सी क्रिया हुई। थोड़ी ज्योति दीखी यह गुरुभाव नहीं है। गुरुभाव इससे बहुत दूर है तुम अपने गुरु में जितनी मात्रा में श्रद्धाभाव को बढ़ाओगे उतनी ही उच्च भूमिका में तुम पहुँच जाओगे इसीलिए तो कहा है–

देवे तीर्थे द्विजे मन्त्रे
दैवज्ञे भेषजेगुरौ।

यादृशी भावना यस्य
सिद्धिर्भवति तादृशी।।

मन्त्र का आशय स्पष्ट है कि देवों में, तीर्थों में, ब्राह्मणों में, चैतन्य मन्त्रों में, दैवी पुरुषों में, वनस्पति औषधियों में और श्री गुरुदेव में जिस प्रकार की भावना होती है, जितनी मात्रा में होती है, उसी प्रकार की और उस मात्रा में सिद्धि प्राप्त होती है।

जो गुरु भवसागर में डूबते हुए को उसमें से निकाल कर अपने जैसा कर लेता है, सब संशय मिटाने के लिए शिष्य के अन्दर प्रवेश करके शिष्य को चितिमय बना देता है, उसके हृदय के अन्दर पूर्ण ब्रह्म के प्रकाश को प्रकाशित करके दिव्य आत्म तेज को जगा देता है, उसको अपनी जैसी ही आत्म रति देता है। ऐसे गुरु के प्रति तुमको कैसे चलना चाहिए यह तुम ही सोचो। वस्तुतः श्री गुरु जगत को शिष्य के लिए संविद मय बना देने की सामर्थ्य रखता है।

श्री गुरु-कृपा से ही मनुष्य को ऋद्धि-सिद्धि तथा परमानन्द की प्राप्ति गुरु के कृपा प्रसाद से ही सुलभ होती है अन्य कोई मार्ग सिद्धि प्राप्त का है ही नहीं, श्री गुरु से शक्ति प्राप्त किये हुए शिष्य की पूर्ण प्राप्ति से ही गुरु को सन्तोष प्राप्त होता है। वस्त्र दिए, द्रव्य दिया, खिलाया पिलाया, इस स्थिति से गुरु को क्या सन्तोष होगा। श्री गुरुवर तो तभी सन्तुष्ट होते हैं जब शिष्य उनसे मिलकर गुरु ही बन जाया करता है।

शोक संवेदना

13 सितम्बर 2019 को विशनचन्द्र गर्ग की पत्नी कमलेश का देहावसान हो गया है। इस दुःख की बेला में दुःखी परिवार को हार्दिक संवेदना व्यक्त करते हैं। श्री प्रभुजी इन्हें अपने चरणों में स्थान दें।

शोकाकुल
आश्रम परिवार
श्री सिद्धगुफा संवाई, आगरा।

सब ऐसे नहीं होते

भगवान बुद्ध ने एक मृत व्यक्ति की लाश को देख कर अपने सारथी से पूछा–' छन्दक यह कौन है ? छन्दक के यह कहने पर कि हे प्रभो यह मृत प्राणी है, एक दिन सभी की यही गति होगी, वे राज्य पाठ छोड़कर जंगल को चले गये।

श्मशान के समीप लकड़ी बेचने वाला मनुष्य भी सैकड़ों आदमियों की लाशें देखता है। उसे सिवाय अपने पैसों के किसी दूसरी बात की चिन्ता ही नहीं। सभी मनुष्य बुद्ध के जैसे हृदय वाले थोड़े ही होते हैं ?

कालीदास की पत्नी ने जब देखा कि जब मेरा पति मूर्ख है तो उसने उसका तिरस्कार किया। कालीदास के हृदय में चोट लगी और जब वह पूर्ण विद्वान होकर घर आया, तब अपनी स्त्री को मुंह दिखाया।

सैकड़ों स्त्रियाँ अपने मूर्ख पतियों का तिरस्कार करती हैं। न तो सभी के लिए जैसे विद्वान हो गये, न तुलसी दास के से दृढ़ भक्त–महात्मा। संसार के लोग बाहर की घटनाओं को ही देखते हैं। भीतर ज्योति जल रही है, उसे भला वे जान ही कैसे सकते हैं !

– श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20 October 2019

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

□□□□□□

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति।।

(कठोपनिषद् 1/21)

अर्थात् : परब्रह्म परमात्मा अचिन्त्यशक्ति हैं और विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में उनमें विरुद्ध धर्मों की लीला होती है। इसी से वे एक साथ सूक्ष्म और महान बताये गये हैं। वे परमेश्वर अपने नित्य परमधाम में विराजमान रहते हुए ही भक्ताधीनतावश उनकी पुकार सुनते ही दूर से दूर चले जाते हैं। परमधाम में निवास करने वाले पार्षद भक्तों की दृष्टि में वहाँ शयन करते हुए ही वे सब ओर चलते रहते हैं। अथवा वे परमात्मा सदा–सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। वे सर्वत्र सब रूपों में नित्य अपनी महिमा में स्थित हैं।

UPHIN/2004/14550